राष्ट्रीय मुक्त विद्यालय शिक्षा संस्थान (NIOS)
द्वारा निर्धारित नवीनतम पाठ्यक्रमानुसार

प्राथमिक शिक्षक शिक्षा (PTE) में छह माह का प्रमाण पत्र पाठ्यक्रम (ब्रिज कोर्स)

सेवारत बी॰एड॰ अध्यापकों के लिए

बाल विकास और शिक्षा मनोविज्ञान

Child Development & Educational Psychology

इकाई-प्रथम

बाल्यावस्था
[CHILDHOOD]

1

बाल्यावस्था को समझना
[UNDERSTANDING CHILDHOOD]

बाल विकास का अर्थ
(Meaning of Child Development)

किसी शब्द के वास्तविक अर्थ को समझने से पूर्व उस शब्द के शाब्दिक अर्थ को जानने की आवश्यकता होती है। शाब्दिक अर्थ (Etymological) के ज्ञान से शब्द की उत्पत्ति के विषय में जानकारी हो जाती है, साथ ही अर्थ भी स्पष्ट हो जाता है। बाल विकास शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है—बाल या बालक (Child) तथा विकास (Development)।

(i) बाल का अर्थ (Meaning of Child)—बालक का तात्पर्य बाल्यावस्था (Childhood) अर्थात् जन्म से 12 वर्ष तक के व्यक्तियों से लगाते हैं किन्तु बाल विकास के अन्तर्गत बालक का गर्भावस्था (Conception) से लेकर युवावस्था (Youthhood) या परिपक्वावस्था (Maturity) तक के बालक से लगाते हैं। बाल विकास के अन्तर्गत बालक का तात्पर्य गर्भावस्था की युवावस्था के परिपक्वावस्था तक के व्यक्ति से है जिसमें विकास के साथ-साथ रचनात्मक परिवर्तन भी होते हैं।

(ii) विकास का अर्थ (Meaning of Development)—विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिसका प्रारम्भ गर्भावस्था से होता है। यह जीवन-पर्यन्त किसी न किसी रूप में चलता रहता है। जन्म से पूर्व गर्भावस्था से विकास प्रारम्भ हो जाता है। आन्तरिक वातावरण से बाह्य वातावरण में आता है। प्राणी के जीवन विकास में शारीरिक, मानसिक क्षमताओं के स्वरूप में जो क्रमगत परिवर्तन होता है, उन्हीं को विकास कहते हैं । प्रथम अवस्था में रचनात्मक परिवर्तन होते हैं । दूसरी अवस्था में ह्रास के लक्षण अभिव्यक्त होते हैं। विकास को तीन भागों में विभाजित किया गया है—उत्पत्ति (Origin), वृद्धि (Growth) एवं अपकर्ष (Fall)। यह क्रम में उद्‌भुत होते हैं । विकास प्राणी में पायी जाने वाली उस स्वाभाविक प्रक्रिया को कहते हैं जिसमें प्राणी में गर्भाधान से लेकर वृद्धावस्था तक अनेक क्रमिक शारीरिक व मानसिक परिवर्तन होते हैं।

मानव जीवन की शुरुआत जन्म से न होकर गर्भाधान के समय ही होती है। मानव का जन्म मानव विकास क्रम की आन्तरिक वातावरण को त्याग कर बाह्य वातावरण में आता है। आन्तरिक वातावरण में मानव की रहने की अवधि कम होती है। बाह्य वातावरण में मानव का अपना अलग महत्व होता है। मानव जीवन में होने वाले परिवर्तनों का क्रम ही विकास कहलाता है (A sequence of changes)।

बाल विकास मनोविज्ञान की वह शाखा है जिसके अन्तर्गत विकासात्मक दृष्टिकोण अपनाते हुए गर्भावस्था से लेकर युवावस्था व परिपक्वावस्था तक के मानव व्यवहार अर्थात् शारीरिक व मानसिक क्रियाओं में होने वाले क्रमिक परिवर्तन जो व्यक्तिगत होते हैं, उनका स्वरूप, समय व कारणों व उनमें अन्तर्निहित प्रक्रिया (Mechanisms) का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है।

यदि बाल विकास के अर्थ का विश्लेषण करें तो निम्नलिखित तथ्यों का समावेश है—

(1) बाल विकास एक सकारात्मक विज्ञान है।

(2) बाल विकास गर्भावस्था से लेकर परिपक्वावस्था तक का अध्ययन है।

(3) बाल विकास बालक के मानसिक विकास का अध्ययन करता है।

(4) बाल विकास शारीरिक विकास का अध्ययन करता है।

(5) बाल विकास अपनी विषय-सामग्री की अध्ययन विकासात्मक दृष्टिकोण से करता है।

इस प्रकार बाल विकास को बाल मनोविज्ञान की संज्ञा दी गयी है। इसके लिए प्रसिद्ध बाल मनोवैज्ञानिक बाल विशेषज्ञ **श्री हरलॉक** ने इस सन्दर्भ में लिखा है, "विकास के कुछ पहलुओं के बजाए बाल विकास के सम्पूर्ण प्रतिमान व समस्त प्रक्रियाओं पर ध्यान केन्द्रित करने पर बल देने की साथ अब बाल मनोविज्ञान का नाम बाल विकास में परिवर्तित हो गया है।"

बाल विकास की परिभाषाएँ
(Definitions of Child Development)

बाल विकास का अर्थ स्पष्ट करने के लिए विभिन्न विद्वानों ने इसकी परिभाषाएँ प्रस्तुत की हैं, जो इस प्रकार हैं—

हरलॉक के अनुसार, "आज बाल विकास में मुख्य रूप से बालक के रूप, व्यवहार, रुचियों एवं लक्ष्यों में होने वाले उन विशिष्ट

परिवर्तनों की खोज पर बल दिया जा रहा है जो उसके विकासात्मक अवस्था से दूसरी विकासावस्था में पदार्पण करते समय होते हैं। इसके अतिरिक्त बाल विकास यह खोज करने का भी प्रयास करता है कि ये परिवर्तन कब होते हैं, इसके लिए कौन से कारण उत्तरदायी हैं और ये वैयक्तिक हैं अथवा सार्वभौमिक।''

"Today, the major emphasis is child development its own discovering the characteristic change in appearance, behaviour, interest and goel as the child passes from one developmental period to another. In addition, child development attempt to find out when these changes occur normally what is responsible for them and whether they are individual or universal." —*E. B. Hurlock,* 1974

''बाल विकास का क्षेत्र मनोवैज्ञानिक शोधों की वह शाखा है जो युवक का गर्भाधान से युवक होने तक अर्थात् ऐसे व्यक्ति को जो कि सेक्स की दृष्टि से परिपक्व होता है किन्तु उसे प्रौढ़ावस्था से सम्बन्धित अधिकारों, सुविधाओं तथा उत्तरदायित्वों को रखने की दृष्टि से परिपक्व नहीं समझा जाता है, का अध्ययन करती है ।''

"The field of child development is that branch of psychological research which studies the youth from conception until the becomes a youth or a person who is sexually mature even though he is not regarded as mature enough to have the rights, privilliges and responsibilities associated with adulthood." —*E. B. Hurlock*

बाल विकास बाल मनोविज्ञान का विकसित स्वरूप है । बाल मनोविज्ञान एवं बाल विकास का एक ही अर्थ है ।

''**क्रो** एण्ड **क्रो** के अनुसार, ''मनोविज्ञान वह विज्ञान है जो व्यक्ति के विकास का वैज्ञानिक अध्ययन गर्भकाल से किशोरावस्था तक करता है ।''

"Child psychology is scientific study of the individual from his parental beginning through the early to this adolescent development." —*Crow and Crow*

जेम्स ड्रेवर के अनुसार ''बाल मनोविज्ञान मनोविज्ञान की वह शाखा है जो प्राणी के विकास का अध्ययन जन्म से परिपक्वावस्था तक करती है।''

"Child psychology is a branch of psychology with studies the human being in development from birth to maturity." —*James Drever*

गैरिसन एवं **अन्य** के अनुसार ''बाल मनोविज्ञान को प्रत्यक्ष सम्बन्ध बाल व्यवहार से है।''

"Psychology is concerned with Observable child behaviour." —*Garrison & others*

स्किनर के अनुसार ''बाल मनोविज्ञान, बालक के व्यवहार एवं अनुभव का विज्ञान है।''

"Child psychology is the science of child behaviour and experience." —*Skinner*

उपर्युक्त सभी परिभाषाएँ बाल मनोविज्ञान बाल विकास की ही शाखा है, ऐसा साबित करती है क्योंकि बालक के विकास, व्यवहार, विकास को प्रभावित करने वाले विभिन्न पहलुओं के अध्ययन का क्षेत्र इसके अन्तर्गत आता है।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक **हरलॉक** ने बाल मनोविज्ञान तथा बाल विकास में निम्न अन्तर बतलाये हैं—

(1) बाल विकास बालक के वातावरण एवं अनुभवों के प्रभाव को बाल मनोविज्ञान की अपेक्षा अधिक महत्व देता है।

(2) बाल विकास बच्चे के विकासात्मक प्रक्रिया, उनकी प्रक्रियाओं में होने वाले क्रमिक बदलाव का अध्ययन करते हैं।

(3) बाल विकास जब शिशु गर्भ में रहता है, तभी से उसका अध्ययन होता है परन्तु बाल मनोविज्ञान का अध्ययन शिशु के जन्म के पश्चात् शुरू होता है ।

(4) बाल विकास बालक की उम्र बढ़ने के साथ-साथ बालक के शारीरिक व्यवहार, रुचि तथा लक्ष्यों में हुए परिवर्तनों का अध्ययन करता है । मनोविज्ञान बच्चों में आये परिवर्तनों के कारण परिवर्तनों से उनके व्यवहार का अध्ययन करता है।

बाल मनोविज्ञान एवं बाल विकास का अर्थ
(Meaning of Child Psychology and Child Development)

बाल विकास बाल मनोविज्ञान का विकसित स्वरूप है । बाल मनोविज्ञान एवं बाल विकास का अन्तर समझने से पूर्व मनोविज्ञान का अर्थ समझ लेना आवश्यक हो जाता है । गर्भावस्था से किशोरावस्था तक के व्यक्ति को मानसिक तथा शारीरिक क्रियाओं या अनुभव व व्यवहार, उसके विभिन्न पहलुओं; जैसे—शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक, सामाजिक, चारित्रिक, नैतिक विकास का अध्ययन करता है । बाल मनोविज्ञान का विषय-क्षेत्र, उद्देश्य व उपयोगिता बाल विकास के समान होती है ।

बीसवीं शताब्दी के दूसरे व तीसरे दशक तक बाल मनोविज्ञान का क्षेत्र सीमित था । बालकों के संवेगों, खेलों, भाषा विकास, बालकों के विभिन्न क्रियाकलापों व शारीरिक, मानसिक विशेषताओं का अध्ययन किया गया । इस प्रकार बाल मनोविज्ञान की लोकप्रियता बढ़ती गयी और भिन्न-भिन्न आयु स्तर पर बाल-व्यवहार के विभिन्न क्षेत्रों का अध्ययन करना पर्याप्त नहीं होता क्योंकि इस अध्ययन से यह पता नहीं चल पाता कि व्यवहार विशेषताओं में क्या-क्या व किस प्रकार के परिवर्तन होते हैं । यह बाल विकास के अन्तर्गत आते हैं । यही बाल मनोविज्ञान का विस्तृत स्वरूप है ।

जहाँ बाल मनोविज्ञान गर्भावस्था, शैशवावस्था, बाल्यावस्था तथा किशोरावस्था तक के व्यवहार का अध्ययन करता था, वहीं बाल विकास इन अवस्थाओं के साथ युवावस्था व परिपक्वावस्था का अध्ययन करने लगा ।

जहाँ बाल मनोविज्ञान विभिन्न आयु स्तर पर बालक के व्यवहार का अध्ययन करता है, वहीं बाल विकास बालकों की आयु वृद्धि के साथ उनके व्यवहार विशेषताओं में क्या, कब व किन कारणों में परिवर्तन होते हैं, इनका अध्ययन करता है ।

बाल विकास का विषय क्षेत्र
(Scope of Child Development)

बाल विकास बालक के सम्पूर्ण जीवन का अध्ययन है । इसका विषय-क्षेत्र गर्भावस्था से लेकर युवावस्था तक की सभी अवस्थाओं

के सभी पहलुओं का अध्ययन है । इसके अतिरिक्त इनके क्षेत्र के अन्तर्गत बाल विकास को प्रभावित करने वाले तत्वों व सिद्धान्तों का अध्ययन है । इसे निम्नलिखित भागों में विभाजित किया गया है—

बाल विकास की विभिन्न अवस्थाओं का अध्ययन (Study of Various Stages of Child Development)—बाल विकास को समझने के लिए बाल मनोवैज्ञानिक विकास के आधार पर कई अवस्थाओं में बाँटा गया है । गर्भावस्था से किशोरावस्था तक बालक के विकास की अग्रलिखित अवस्थाएँ होती हैं—

(i) गर्भावस्था (Parental Period)—यह अवस्था गर्भाधान (Conception) से लेकर जन्म तक की अवस्था है । गर्भस्थ शिशु का स्वाभाविक विकास द्रुतगति से होता है । जन्म से पूर्व बच्चे की आकृति एवं विभिन्न अंगों का निर्माण हो जाता है । बच्चे के वजन (Weight) व आकार (Size) में वृद्धि होती है । बच्चे के विकासात्मक पहलुओं का अध्ययन इसके क्षेत्र में आता है ।

(ii) शैशवावस्था (Infancy)—जन्म के बाद दो सप्ताह के शिशु को Neonate और इस अवधि को शैशवावस्था कहते हैं । विकासात्मक मनोविज्ञान के आधार पर गत्यात्मक, शारीरिक, संवेगात्मक क्षमताओं व उनकी प्रक्रिया आदि का अध्ययन किया जाता है ।

(iii) उत्तर शैशवावस्था (Babyhood)—यह अवस्था दो सप्ताह से लेकर दो वर्ष तक की अवधि की होती है । इस काल में बच्चे को बाल शिशु कहा जाता है । इस अवस्था में बाल विकास में बाल शिशु के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक, गत्यात्मक व भाषा सम्बन्धी विकास का अध्ययन किया जाता है ।

(iv) बाल्यावस्था (Childhood)—बाल्यावस्था का काल दो वर्ष से बारह वर्ष तक होता है । बालक के शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक, नैतिक, चारित्रिक विकास के साथ-साथ कल्पना, चिन्तन, स्मरण, संवेदना, प्रत्यक्षीकरण, बुद्धि, भाषा, खेल, व्यक्तित्व इत्यादि का अध्ययन इसके अन्तर्गत आता है ।

(v) वयः सन्धि (Puberty Period)—बाल्यावस्था व किशोरावस्था के बीच की अवस्था इसके अन्तर्गत आती है । शारीरिक विकास की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण अवस्था है । यौन भिन्नता इस अवस्था को प्रभावित करती है । शारीरिक व मानसिक विकास की गति को प्रभावित करती है । संवेगात्मक व सामाजिक दृष्टि से यह अवस्था महत्वपूर्ण होती है । बालकों की अपेक्षा बालिकाएँ संवेगात्मक रूप से विचलित हो जाती हैं और सामाजिक नियन्त्रण खो देती हैं । इसलिए इस अवस्था में माता-पिता का यह कर्तव्य बनता है कि उचित दिशा निर्देशित करें व इस उम्र में बालक-बालिकाओं को प्रशिक्षित करें ।

(vi) किशोरावस्था (Adolesence)—किशोरावस्था बारह से इक्कीस वर्ष की अवधि की अवस्था मानी जाती है । वैसे अंग्रेजी के अनुसार Teen जब तक रहता है; जैसे—Thirteen, Fourteen, Fifteen, Sixteen, Seventeen, Eighteen, Nineteen सभी अवस्थाएँ किशोरावस्था में आती हैं । **स्टैनली हाल** के शब्दों में, "किशोरावस्था बड़े बल एवं तनाव, तूफान एवं विरोध की अवस्था है ।" इस अवस्था में यौन विशेषताओं की प्रधानता के कारण किशोर व किशोरियों में प्रतिक्रियाएँ, मनोवृत्तियाँ तथा जीवन-शैली में परिवर्तन होता है । इसमें शारीरिक, मानसिक परिवर्तन के कारण सन्तुलन समस्याएँ या समायोजन समस्याएँ उत्पन्न होती हैं ।

(vii) प्रौढ़ावस्था (Adulthood)—यह अवस्था इक्कीस वर्ष से 40 वर्ष तक की अवस्था है । इस अवस्था में बालक अधिकारों एवं कर्तव्यों को समझते हुए उनका निर्वाह करने लगता है । इस अवस्था के समाप्त होते व्यक्ति के रचनात्मक परिवर्तन भी पूर्णतया समाप्त हो जाते हैं ।

बाल विकास के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन (Study of Various Aspects of Child Development)

बालक के व्यक्तित्व के समस्त पहलुओं का विकास गर्भावस्था से शैशवावस्था में नहीं हो पाता। जैसे-जैसे परिपक्वावस्था की ओर बढ़ता जाता है, इसी प्रकार व्यक्तित्व के पहलुओं का विकास होता जाता है । बाल-विकास के विभिन्न पहलू निम्नलिखित हैं—

(i) शारीरिक विकास (Physical Development),
(ii) गत्यात्मक विकास (Motor Development),
(iii) मानसिक विकास (Mental Development),
(iv) संवेगात्मक विकास (Language Emotional Development),
(v) भाषा विकास (Development),
(vi) सामाजिक विकास (Social Development),
(vii) नैतिक विकास (Moral Development),
(viii) चारित्रिक विकास (Character Development),
(ix) सौन्दर्यात्मक विकास (Asthetic Development),
(x) धार्मिक विकास (Religious Development),
(xi) स्मृति का विकास (Memory Development),
(xii) प्रतिभा व कल्पना का विकास (Imagination Development),
(xiii) अवधान व रुचि का विकास (Attention and Interest Development),
(xiv) चिन्तन एवं रुचि का विकास (Thinking and Reasoning Development),
(xv) खेल विकास (Play Development),
(xvi) व्यक्तित्व विकास (Personality Development)।

अनेक शिक्षाविदों एवं मनोवैज्ञानिकों ने बाल मनोविज्ञान की विषय सामग्री को इस अनिश्चित परिस्थिति से निश्चित परिस्थिति में लाने का प्रयास किया है तथा इसके क्षेत्र में निम्नांकित बातों को स्थान दिया है—

1. बालकों की अभिवृद्धि एवं विकास का अध्ययन।
2. बालकों की रुचियों एवं रुचियों का अध्ययन।
3. बालकों के वंशानुक्रम (Heredity) एवं वातावरण (Environment) का अध्ययन।
4. बालकों की मूल प्रवृत्तियों (Fundamental Tendencies) का अध्ययन।
5. बालकों की विशेष योग्यताओं का अध्ययन।
6. बालकों की शारीरिक, मानसिक व संवेगात्मक क्रियाओं का अध्ययन।

7. बालकों की वैयक्तिक भिन्नताओं (Individual Differences) का अध्ययन।

8. अपराधी, असाधारण और मानसिक रोगों से ग्रस्त बालकों का अध्ययन।

9. सीखने की क्रिया का अध्ययन।

10. अनुशासन सम्बन्धी समस्याओं का अध्ययन।

बाल मनोविज्ञान के क्षेत्र की उपरोक्त विवेचना के आधार पर निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि बाल मनोविज्ञान के क्षेत्र में वह सब ज्ञान व विधियाँ सम्मिलित हैं जो बाल व्यवहार से सम्बन्धित हैं तथा बाल शिक्षा के लिए आवश्यक है।

बाल विकास के सिद्धान्तों का शैक्षिक महत्व

1. बालक की विकास की अवस्थाओं का अध्ययन कर सकेंगे।
2. बालकों में वंशानुक्रम व वातवरण का अध्ययन कर सकेंगे।
3. बालक की विशिष्ट योग्यताओं का अध्ययन कर सकेंगे।
4. बालक की रुचियों, प्रेरणाओं और मूल प्रवृत्तियों का अध्ययन।
5. विशिष्ट बालकों का अध्ययन।
6. व्यक्तिगत अन्तर कर सकेंगे।
7. विकास प्रासंगिक होगा।

बाल मनोविज्ञान की आवश्यकता तथा महत्व
(Need and Importance of Child Development)

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में बाल मनोविज्ञान का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान हैं शिक्षक, शिक्षार्थी व शिक्षण व्यवस्था की दृष्टि से बाल मनोविज्ञान अत्यन्त उपयोगी है। आज विश्व के मनोवैज्ञानिक ही नहीं वरन् शिक्षाशास्त्री, शिक्षा दार्शनिक, समाज सुधारक, शिक्षक, राजनीतिज्ञ एवं मनोविश्लेषक भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि शिक्षा, मनोविज्ञान पर आधारित होनी चाहिए। इसके महत्व को स्पष्ट करते हुए **जेम्स ड्रेवर** ने लिखा है- ''मनोविज्ञान एक महत्वपूर्ण कारक है, इसकी सहायता लिए बिना हम शिक्षा की समस्याओं का समाधान नहीं कर सकतें।''

"Psychology is an Important factor, we con not solve the problems of education without taking help of psychology." *–James Drever*

उपरोक्त दृष्टि से बाल मनोविज्ञान की उपयोगिता एवं महत्व का संक्षेप में वर्णन किया जा रहा है—

1. शिक्षार्थी की दृष्टि से—

उपरोक्त दृष्टि से बाल मनोविज्ञान की उपयोगिता एवं महत्व का संक्षेप में वर्णन किया जा रहा है—

शिक्षण प्रक्रिया की प्रमुख सामग्री बालक है। अत: शिक्षा देने के लिए बालक के विषय में पूर्ण जानकारी होनी आवश्यक है। बाल मनोविज्ञान की सहायता से बालक से सम्बन्धित अधोलिखित जानकारी प्राप्त की जा सकती है—

(i) बालकों के वंशानुक्रम व वातावरण का अध्ययन।

(ii) बालकों के विकास की अवस्थाओं का अध्ययन।

(iii) बालक की विशिष्ट योग्यता का अध्ययन।

(iv) बालक की शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा संवेगिक क्रियाओं का अध्ययन।

(v) बालक की व्यक्तिगत भिन्नताओं का अध्ययन।

(vi) बालक की रूचियों, प्रेरणाओं और मूल प्रवृत्तियों का अध्ययन।

(vii) विशिष्ट बालकों का अध्ययययन।

बालक के सन्दर्भ में उपरोक्त जानकारी प्राप्त करने के बाद ही बालक को शिक्षा देना लाभ प्रद होती हैं। बाल मनोविज्ञान का विषय बालक का अध्ययन करना और आवश्यकतानुसार सामग्री जुटाना है। आज शिक्षा में बालक को प्रमुख स्थान दिया जा रहा हैं जो बाल मनोविज्ञान की देन है।

2. शिक्षक की दृष्टि से—

बाल मनोविज्ञान का अध्ययन न केवल छात्रों के लिए ही वरन् अध्यापकों के लिए भी उपयोगी है। बाल मनोविज्ञान के अभाव में कोई भी अध्यापक अपने कार्य को कुशलतापूर्वक सम्पादित नहीं कर सकता। वर्तमान **परिप्रेक्ष्य** में बाल मनोविज्ञान का ज्ञान ही अध्यापक की सफलता का रहस्य है। अपने शिक्षणकार्य को प्रभावशाली बनाने तथा छात्रों के सीखने को सरल, सहज व रूचिकर बनाने के लिए अध्यापक को मनोविज्ञान के सिद्धांतों का उपयोग करना अनिवार्य होता है। इस सन्दर्भ में **एलिस क्रो** के विचारों को उद्धृत किया जा सकता है– ''शिक्षकों को अपने शिक्षण में उन मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का प्रयोग करना चाहिए, जो सफल शिक्षण और फलोत्पादक अधिगम के लिए अनिवार्य है।''

"The Teacher should be prepared to apply in his teaching activities the psychological principals the are basic to successful teaching and effective learning." *–Alice Crow*

शिक्षक के लिए बाल मनोविज्ञान की उपयोगिता को निम्नलिखित बिन्दुओं द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है–

* बाल मनोविज्ञान, शिक्षक को सम्यक् दृष्टिकोण प्रदान करता है।

* बाल मनोविज्ञान की सहायता से बालक के विकास की विभिन्न अवस्थाओं का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। इससे शिक्षक रूचि, क्रिया व खेल के सिद्धान्तों पर आधारित शिक्षण पद्धति का उपयोग करता है।

बाल्यावस्था : जीवन का अनोखा काल
("Childhood is the Unique Period of Life" –Cole & Bruce)

मानव-विकास की दूसरी अवस्था बाल्यावस्था है। शैशवावस्था के पश्चात् बाल्यावस्था आती है। इस अवस्था में बालक में कुछ ऐसे परिवर्तन होते हैं, जिन्हें अभिभावक और अध्यापक आसानी से नहीं समझ पाते। शैशवकाल में बालक के लिए संसार रहस्यमय होता है। उसका शरीर और मन दोनों अविकसित दशा में होते हैं, अत: वह प्रत्येक बात के लिए दूसरें पर निर्भर रहता है, परन्तु बाल्यावस्था में प्रवेश करने पर बालक आत्मनिर्भर होने लगता है।

बाल्यावस्था का तात्पर्य (Meaning of Childhood)

सामान्यत: मनोवैज्ञानिकों ने 2 वर्ष से 12 वर्ष के बीच की अवस्था को बाल्यावस्था माना है। इस अवस्था में बालक के जीवन

में स्थायित्व आने लगता है और वह भावी जीवन की तैयारी करता है।

हरलॉक के अनुसार—"उत्तर-बाल्यावस्था 6 वर्ष की आयु से लेकर यौवनारम्भ होने तक ग्यारह और बारह वर्षों के बीच होती है।"

"Late childhood extends from the age of six years to the onset of puberty between eleven and twelve years."

—*Hurlock*

बाल्यावस्था में बालक में अनेक परिवर्तन होते हैं। शिक्षा आरम्भ करने के लिए यह आयु सर्वोत्तम है। शिक्षाविदों ने भी इसे प्रारम्भिक विद्यालय की आयु (Elementary School Age) कहा है। इस उम्र में सामाजिक सम्बन्ध कायम करने की भावना बालक-बालिकाओं में स्पष्ट दिखायी देती है। ये अपना-अपना समूह बनाते हैं। इसीलिए मनोवैज्ञानिकों ने इस अवस्था को 'समूह की अवस्था' (Gang age) भी कहा है। कुछ मनोवैज्ञानिक इसे 'चुस्ती की आयु' (Smart age) एवं 'गन्दी आयु (Dirty age) भी कहते हैं।

बाल्यावस्था की प्रमुख विशेषताएँ
(Chief Characteristics of Childhood)

सर्वांगीण विकास की दृष्टि से बाल्यावस्था की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1. शारीरिक तथा मानसिक विकास में स्थिरता (Stability in Physical and Mental Growth)—बाल्यावस्था में शारीरिक तथा मानसिक विकास में स्थिरता आ जाती है। विकास की स्थिरता शारीरिक तथा मानसिक शक्तियों को दृढ़ता प्रदान करती है। बालक की चंचलता घटने लगती है, उसका मस्तिष्क परिपक्व दिखायी देने लगता है तथा वह प्रौढ़ों के समान व्यवहार करना चाहता है। **जे. एस. रास** (Ross) ने बाल्यावस्था को 'मिथ्या परिपक्वता' (Maturity) का काल कहा है।

2. मानसिक योग्यताओं में वृद्धि—(Growth in Mental Abilities)—बाल्यावस्था के दौरान बालक की मानसिक क्षमताओं में लगातार वृद्धि) होती रहती है। संवदेना, प्रत्यक्षीकरण, स्मरण शक्ति का विकास द्रुतगति से होता है। स्थायी स्मृति में वृद्धि) होती है।

3. आत्म-निर्भरता की भावना (Feeling of Self-Dependence)—बालक शैशवावस्था की भाँति बाल्यावस्था मे दूसरों पर निर्भर नहीं होता। वह अपने दैनिक कार्य जैसे मंजनं करना, कपड़ा पहनना, विद्यालय के लिए तैयार होना आदि कार्य खुद कर लेता है। इस अवस्था में बालक में आत्म-निर्भरता की भावना विकसित होने लगती है।

4. रचनात्मक कार्यों में रूचि (Interest in Work)—इस अवस्था में बालक को रचनात्मक कार्यों में विशेष आनन्द आता है। जैसे बगीचे में कार्य करना, लकड़ी, कागज या अन्य किसी वस्तु से कुछ बनाना। बालिकाएँ भी घर में कोई न कोई रचनात्मक कार्य करती है जैसे-सिलाई, कढ़ाई, बुनाई या रसोई धर का काम करना।

5. जिज्ञासा की प्रबलता (Intensity of Curiosity)—बालक जिन वस्तुओं के सम्पर्क में आता है उन सबके विषय में जानना चाहता है। इस समय वह यह नहीं पूछता कि "ये क्या है?" बल्कि वह यह पूछता है कि "यह ऐसा क्यों हैं?" रास ने बालक की इस प्रवृत्ति के सम्बन्ध में कहा है—"उत्तर बाल्यावस्था में बालक ऐसी बातों के प्रति अत्यधिक जिज्ञासु होता है अमुक बातें कैसे होती हैं? अमुक चीज किस प्रकार कार्य करती है? इत्यादि।"

6. सामूहिक प्रवृत्ति की प्रबलता (Intensity of Gregari-ousness)—इस अवस्था में बालक में सामूहिक प्रवृत्ति प्रबल होती है। वह अपना अधिक से अधिक समय दूसरे बालकों के साथ बिताना चाहता है। उसकी रूचि सामूहिक खेलों में अधिक होती है। बालक किसी न किसी समूह का सदस्य बन जाता है तथा उस समूह के सभी सदस्य मिलकर खेल खेलते हैं।

7. सामाजिक एवं नैतिक गुणों का विकास (Development of Social and Moral Qualities)—इस समय बालक अपने संगी-साथियों के साथ अधिक समय बिताता है। उसका व्यवहार दूसरों की प्रशंसा तथा निन्दा पर आधारित होता है। इसके फलस्वरूप उसमें अनेक सामाजिक तथा नैतिक गुणों जैसे-आज्ञापालन, सहयोग, सहनशीलता, ईमानदारी, सद्भावना, सहानुभूति, आत्मनियंत्रण, अनुशासन आदि का विकास होने लगता है।

स्ट्रैंग (Strang) के अनुसार, "छः, सात और आठ वर्ष के बालकों में अच्छे-बुरे के ज्ञान एवं न्यायपूर्ण व्यवहार, ईमानदारी और सामाजिक मूल्यों की भावना का विकास होने लगता है।"

8. सामूहिक खेलों में विशेष रूचि (Interest in Group Play)—खेल इस अवस्था की अधिक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति है। **कार्लग्रूस** (Karlgroos) के अनुसार, "खेलों द्वारा व्यक्ति अपने भावी जीवन की तैयारी करता है।" **स्टेनले हॉल** (Stanely Hall) के अनुसार, "बालकों के खेल उन कार्यो की पुनरावृत्ति है, जो सृष्टि के प्रारम्भ से उनके पूर्वज करते आये हैं।" इस उम्र में बालक बालकों के साथ और बालिकाएँ बालिकाओं के साथ खेलने में रूचि लेते हैं। उनमें सखा-भाव एवं सखी-भाव दिखायी देता है।

9. काम-प्रवृत्ति की न्यूनता (Lesser Sense of Sex)—मनोवैज्ञानिकों के अनुसार बच्चे में जन्म से ही काम भावना विकसित होने लगती है। किन्तु बाल्यावस्था में स्वप्रेम तथा पिता व मातृ विरोधी काम ग्रन्थियाँ समाप्त हो जाती है, और बालक-बालिकाओं में समलिंगी प्रेम भावना का उदय होता है।

10. संग्रह-प्रवृत्ति का विकास (Development of Acquisition Tendency)—इस अवस्था में संग्रह करने की प्रवृत्ति भी जागृत होती है। बालक विशेषरूप से पुराने स्टैम्प, बोलियाँ, खिलौने, मशीनों के पुर्जे, पत्थर के टुकड़े और बालिकाएँ खिलौने, गुड़िया, कपड़ों के टुकड़े, चित्रों आदि का संग्रह करते हैं।

बाल्यावस्था में शिक्षा
(Education during Chilodhood)

शिक्षा और विकास में घनिष्ठ सम्बन्ध है। शिक्षा विकास की प्रक्रिया है। बाल्यावस्था बालक के जीवन की महत्वपूर्ण अवस्था है। अतः यह आवश्यक नहीं अनिवार्य भी है कि बालक के विकास के

सभी पक्षों को दृष्टिगत रखते हुए शिक्षा का स्वरूप निश्चित किया जाय। बालक की शिक्षा का उत्तरदायित्व माता-पिता, अध्यापक तथा समाज पर है। बाल्यावस्था के दौरान बालक बालिकाओं की शिक्षा व्यवस्था करते समय निम्नलिखित शीर्षकों पर ध्यान लाभप्रद है—

1. शारीरिक विकास पर ध्यान (Attention on Physical Development)—स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क का निवास होता है। अत: मानसिक विकास के लिए शारीरिक विकास पर ध्यान देना संगत है। बालकों के उत्तम स्वास्थ्य के लिए उन्हें सन्तुलित और पौष्टिक भोजन देना चाहिए। अध्यापकों को चाहिए कि विद्यालयों में उन्हें खेल-कूद, व्यायाम आदि शारीरिक क्रियाओं का अवसर दें।

2. बाल मनोविज्ञान पर आधारित शिक्षा (Education Based on Child Psychology)—प्राचीन काल में शिक्षा अध्यापक की इच्छा से चलती थी। डण्डे के बल पर अनुशासन कायम किया जाता था। इच्छा न रहने पर भी बालक को पुस्तक की तरफ देखते रहना पड़ता था। ऐसी शिक्षा को अध्यापक-केन्द्रित शिक्षा कहते थे। जब मनोविज्ञान का शिक्षा में पर्दापण हुआ तो शिक्षा अध्यापक-केन्द्रित से हटकर बाल-केन्द्रित हो गयी। इस बाल-केन्द्रित शिक्षा में बालक की रूचि, योग्यता और क्षमता पर ध्यान दिया जाने लगा। बाल-मनोविज्ञान के अनुसार बालकों के लिए स्नेह व सहानुभूति पर आधारित शिक्षा-व्यवस्था उपर्युक्त है।

3. खेल तथा क्रिया द्वारा शिक्षा (Education through Play and Activity)—खेल और क्रियाशीलता बालकों की सहज एवं स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ है। आधुनिक शिक्षा मनोवैज्ञानिकों ने बालक की शिक्षा में खेल और क्रिया को प्रमुख स्थान दिया है। खेल द्वारा किया जाने वाला कार्य बालक के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा संवेगिक विकास में सहायक है। खेल तथा क्रिया द्वारा बालक सरलता, सहजता, उत्साह तथा प्रसन्नता से नयी बातों को सीख लेते हैं।

4. रोचक पाठ्यक्रम (Curriculum Engaging Interest)—पाठ्यक्रम में ऐसे दर्शनों को रखना चाहिए जो बालकों की रूचि और आवश्यकता के अनुरूप हो तथा जीवन से सम्बन्धित हो। अनावश्यक दर्शनों और पुस्तकों का बोझ उन पर न लादा जाय, अन्यथा रटकर परीक्षा पास करने से उनका मानसिक विकास यथोचित ढंग से नहीं हो पायेगा।

5. भाषा विकास पर ध्यान (Attention on Language Development)—बाल्यावस्था में भाषा-विकास पर ध्यान देना चाहिए। बालकों के भाषा सम्बन्धी ज्ञान में वृद्धि) के लिए उन्हें बातचीत करने, कहानियाँ सुनाने, पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ने, वाद-विवाद में भाग लेने, भाषण देने, कविता सुनाने, टेलीविजन देखने आदि का अवसर देना चाहिए।

6. मानसिक विकास पर ध्यान (Attention on Mental Development)—मानसिक विकास के लिए प्राकृतिक एवं शान्त वातावरण उपयुक्त है, अत: बाल्यावस्था में मानसिक विकास के लिए यथासम्भव अनुकूल वातावरण तैयार करना चाहिए। घर का और विद्यालय का वातावरण ऐसा होना चाहिए ताकि बालकों की विभिन्न मानसिक योग्यताओं प्रत्यक्षीकरण, स्मृति, कल्पना, चिन्तन, तर्क आदि का यथोक्ति विकास हो सके।

7. नैतिक शिक्षा (Moral Education)—नैतिक शिक्षा पढ़ाने की चीज नही बल्कि सिखाने की चीज है। मेरे छात्र जीवन में नैतिकता सिखायी जाती थी, परन्तु अब माध्यमिक विद्यालयों में नैतिक शिक्षा पढ़ायी जाती है, जो अनुचित है। बालकों को नैतिकता सिखानी चाहिए। इस अवस्था में बालक नैतिक मान्यताओं और नियमों में विश्वास करने लगता है। अत: इस अवस्था में नैतिक मूल्यों के विकास तथा सामाजिक मान्यताओं और नियमों में आस्था जागृत करने के लिए नैतिकता सिखाना आवश्यक है।

8. सामाजिक गुणों का विकास (Development of Social Qualities)—बाल्यावस्था में परिवार के बाद मुख्य रूप से बालक का समाजीकरण विद्यालय में होता है, अत: अध्यापक का दायित्व है कि वह कक्षा, विद्यालय तथा खेल के मैदान में ऐसा वातावरण तैयार करे जिससे बालक का अनुकूल सामाजिक विकास हो। विद्यालय में ऐसे कार्यक्रम आयोजित किये जायँ जिससे बालकों में अनुशासन, आत्मसंयम, उत्तरदायित्व, आज्ञाकारिता, विनम्रता, सहयोग, सहानुभूति आदि गुणों का विकास हो सके।

9. रचनात्मक कार्यों की व्यवस्था (Arrangement of Constructive Work)—बालकों में रचनात्मक कार्य करने की प्रवृत्ति प्रारम्भ से ही दिखायी देती है। जैसे मिट्टी और ईंटे से घरौंदा बनाना, लकड़ी के छोटे-छोटे गुटको में कोई वस्तु बनाना आदि। घर में तथा विद्यालय में छात्र-छात्राओं के लिए रचनात्मक कार्यों की व्यवस्था करनी चाहिए। मिट्टी, लकड़ी, दफ्ती आदि के द्वारा अनेक प्रकार की वस्तुएँ बनवाकर छात्र-छात्राओं में रचनात्मक प्रवृत्ति का विकास करना चाहिए।

10. सामूहिक प्रवृत्ति की सन्तुष्टि (Satisfaction of Gregariousness)—बाल्यावस्था में समूह मे रहने की प्रवृत्ति प्रबल होती है। वह अकेले रहना नहीं पसन्द करता। वह अन्य बालकों तथा मित्रों के साथ मिल-जुलकर रहना तथा उनके साथ कार्य करने में आनन्द का अनुभव करता है। अत: विद्यालय में सभा, स्काउट-गाइड, पर्यटन, नाटक, सरस्वती यात्राएँ, सांस्कृतिक कार्यक्रम आदि का आयोजन समय-समय पर करना चाहिए।

शिक्षा की दृष्टि से बाल्यावस्था जीवन की महत्वपूर्ण अवस्था है, अत: इस काल के बालक के व्यक्तित्व का बहुमुखी विकास करने का दायित्व माता-पिता, अभिभावक एवं अध्यापकों का है। इस अवस्था में उन साधनों और तरीकों का इस्तेमाल करना चाहिए, जिससे बालक का सन्तुलित विकास हो सके तथा वह भावी जीवन के लिए तैयार हो सके।

बाल्यावस्था की संकल्पना : समानताएँ और विविधताएँ

बाल्यावस्था एक सामाजिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक संकल्पना है, जो हर समाज में समान नहीं होती। सामान्य रूप से बचपन को सीखने, संरक्षण, खेल और विकास की अवस्था माना जाता

है, जो सभी संस्कृतियों में किसी न किसी रूप में समान है। यही बचपन की **समानताएँ** हैं। परन्तु सामाजिक वर्ग, जाति, लिंग, आर्थिक स्थिति, ग्रामीण-शहरी परिवेश और पारिवारिक संरचना के आधार पर बचपन का अनुभव भिन्न-भिन्न होता है, जिसे **विविधताएँ** कहा जाता है। भारतीय संदर्भ में **'एक नहीं, अनेक बचपन''** की अवधारणा सामने आती है।

उदाहरण के लिए, एक मध्यमवर्गीय शहरी बच्चे का बचपन विद्यालय, ट्यूशन और डिजिटल साधनों से जुड़ा होता है, जबकि ग्रामीण या आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के बच्चों का बचपन श्रम,पारिवारिक जिम्मेदारियों और सीमित शैक्षिक अवसरों से प्रभावित होता है। बाल श्रमिक, आदिवासी बच्चे, विशेष आवश्यकता वाले बच्चे और बालिकाएँ– सभी का बचपन अलग-अलग सामाजिक परिस्थितियों में निर्मित होता है। इस प्रकार भारत में बचपन को एक समान अनुभव न मानकर बहुविध और सामाजिक रूप से निर्मित अनुभव के रूप में समझा जाता है, जो शिक्षा और नीति निर्माण के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

बाल्यावस्था की धारणा में समानताएँ और विविधताएँ तथा भारतीय संदर्भ में बहुविध बचपन का निर्माण

बाल्यावस्था की संकल्पना यह स्पष्ट करती है कि समाज बच्चों को किस दृष्टि से देखता है और उनसे क्या अपेक्षाएँ रखता है। बचपन केवल आयु से जुड़ी जैविक अवस्था नहीं है, बल्कि यह सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और ऐतिहासिक परिस्थितियों से निर्मित होती है। प्रत्येक समाज अपने मूल्यों और मान्यताओं के अनुसार बचपन को परिभाषित करता है।

बाल्यावस्था की धारणा में समानताएँ (Commonalities)

कुछ विशेषताएँ ऐसी हैं जो लगभग सभी समाजों में बचपन से जुड़ी पायी जाती हैं—

(1) बचपन को सीखने और विकास की अवस्था माना जाता है।

(2) बच्चों को संरक्षण, प्रेम और देखभाल की आवश्यकता होती है।

(3) खेल, जिज्ञासा और कल्पनाशीलता बचपन के सामान्य गुण माने जाते हैं।

(4) बच्चों को धीरे-धीरे सामाजिक नियमों और मूल्यों से परिचित कराया जाता है।

ये समानताएँ यह दर्शाती हैं कि बचपन को विश्व स्तर पर एक विशेष जीवन-चरण के रूप में स्वीकार किया गया है।

बाल्यावस्था की धारणा में विविधताएँ (Diversities)

समानताओं के साथ-साथ बचपन की गहरी विविधताएँ भी पायी जाती हैं, जो समाज की संरचना पर निर्भर करती हैं—

(1) आर्थिक स्थिति के आधार पर बच्चों के अनुभव अलग-अलग होते हैं।

(2) ग्रामीण शहरी और महानगरीय बच्चों का बचपन भिन्न होता है।

(3) जाति, वर्ग, लिंग और धर्म भी बचपन के स्वरूप को प्रभावित करते हैं।

(4) कुछ बच्चों का बचपन शिक्षा और मनोरंजन से जुड़ा होता है, जबकि कुछ का श्रम और जिम्मेदारियों से।

भारतीय संदर्भ में बहुविध बचपन (Multiple Childhoods in Indian Context)

भारत सामाजिक और सांस्कृतिक विविधताओं से भरा देश है, इसलिए यहाँ एक नहीं, बल्कि अनेक प्रकार के बचपन पाए जाते हैं—

(1) मध्यम और उच्च वर्ग के बच्चों का बचपन स्कूल, कोचिंग, खेल और डिजिटल साधनों के इर्द-गिर्द घूमता है।

(2) गरीब और वंचित वर्ग के बच्चों का बचपन काम, पारिवारिक सहयोग और संघर्ष से जुड़ा होता है।

(3) बाल श्रमिक, सड़क पर रहने वाले बच्चे और आदिवासी बच्चों के अनुभव मुख्यधारा से अलग होते हैं।

(4) लड़कियों का बचपन कई बार घरेलू कार्यों और सामाजिक प्रतिबंधों से सीमित हो जाता है।

इस प्रकार भारत में बचपन को एक समान अनुभव मानना उचित नहीं है। **बहुविध बचपन की अवधारणा** यह समझने में सहायता करती है कि सभी बच्चों की आवश्यकताएँ समस्याएँ और क्षमताएँ समान नहीं होतीं।

शैक्षिक दृष्टिकोण से महत्व

(1) शिक्षा व्यवस्था को सभी प्रकार के बचपन के अनुरूप बनाना आवश्यक है।

(2) पाठ्यचर्या बाल-केन्द्रित और समावेशी होनी चाहिए।

(3) शिक्षकों को बच्चों की सामाजिक पृष्ठभूमि को समझना चाहिए।

बचपन एक सामाजिक रूप से निर्मित अवधारणा है जिसमें समानताएँ भी हैं और विविधताएँ भी। भारतीय संदर्भ में बचपन को **बहुविध अनुभव** के रूप में समझना ही बच्चों के समग्र विकास के लिए आवश्यक है।

वैश्वीकरण के संदर्भ में बचपन की संकल्पनाएँ (Constructs of Childhood in the Context of Globalization)

वैश्वीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें विश्व के विभिन्न देश आर्थिक, सांस्कृतिक, तकनीकी और शैक्षिक रूप से एक-दूसरे से जुड़े हैं। इस प्रक्रिया ने समाज के साथ-साथ **बचपन की संकल्पना** को भी गहराई से प्रभावित किया है। आज का बचपन केवल स्थानीय संस्कृति और परम्पराओं से निर्मित नहीं होता, बल्कि उस पर वैश्विक प्रभाव भी स्पष्ट रूप दिखाई देते हैं।

वैश्वीकरण के कारण बच्चों के जीवन में **सूचना और संचार प्रौद्योगिकी** की भूमिका बढ़ गयी है। मोबाइल फोन, इंटरनेट, सोशल मीडिया, ऑनलाइन गेम और डिजिटल शिक्षा ने बच्चों की सीखने की शैली, भाषा, रुचियों और सोच को बदल दिया है। अब बच्चे कम उम्र में ही वैश्विक ज्ञान, अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं और नई तकनीकों से परिचत हो जाते हैं।

वैश्वीकरण के संदर्भ में बचपन की संकल्पना को निम्न बिन्दुओं के माध्यम से समझा जा सकता है—

(i) मीडिया और उपभोक्तावाद का प्रभाव बच्चों की इच्छाओं और जीवन-शैली को प्रभावित करता है।

(ii) शिक्षा अधिक प्रतिस्पर्धात्मक और प्रदर्शन-आधारित हो गयी है।

(iii) बच्चों पर उपलब्धि और सफलता का मानसिक दबाव बढ़ा है।

(iv) अंतर्राष्ट्रीय पाठ्यक्रम, ऑनलाइन शिक्षण और वैश्विक मूल्यों का प्रसार हुआ है।

इसके साथ ही वैश्वीकरण ने कुछ **सकारात्मक परिवर्तन** भी किए हैं।

(i) शिक्षा और सूचना तक पहुँच आसान हुई है।

(ii) बच्चों के अधिकारों, संरक्षण और समानता पर वैश्विक स्तर पर जागरूकता बढ़ी है।

(iii) विशेष आवश्यकता वाले बच्चों और वंचित वर्ग के लिए नई संभावनाएँ उत्पन्न हुई हैं।

परन्तु इसके **नकारात्मक प्रभाव** भी सामने आए हैं।

(iv) उपभोक्तावादी संस्कृति के कारण बच्चों में भौतिक इच्छाएँ बढ़ी हैं।

(v) पारंपरिक खेल, पारिवारिक संवाद और सामाजिक संबंध कमजोर हुए हैं।

(vi) वैश्वीकरण के लाभ सभी बच्चों तक समान रूप से नहीं पहुँचते, जिससे असमानताएँ बढ़ती हैं।

वैश्वीकरण के संदर्भ में बचपन एक जटिल और परिवर्तनशील संकल्पना बन गया है, जिसमें स्थानीय और वैश्विक दोनों प्रभाव साथ- साथ कार्य करते हैं। इसलिए आवश्यक है कि शिक्षा और समाज बच्चों के विकास को संतुलित, संवेदनशील और बाल-केन्द्रित दृष्टिकोण से समझें।

दीर्घ एवं लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1. बाल विकास का महत्व लिखिए।

उत्तर—यदि आप बच्चे का सर्वांगीण विकास उचित तरीके से करना चाहते हैं तो आपको बच्चों को जानना और समझना होगा। एक सफल शिक्षक के रूप में बच्चे का सर्वांगीण विकास तभी कर सकते हैं जब आप बच्चे की आयु, मानसिक स्तर, अभिवृद्धि विकास के साथ होने वाले परिवर्तनों, सीखने की क्षमता, आदतों, रुचियों, आवश्यकताओं, समस्याओं आदि के साथ-साथ सीखने-सिखाने की रुचिपूर्ण एवं आनंदमयी शिक्षण विधियों से परिचित होंगे। बाल मनोविज्ञान में हम इन्हीं के बारे में अध्ययन करते हैं।

प्रश्न 2. बाल विकास के उद्देश्य क्या हैं ?

उत्तर—बाल विकास का उद्देश्य बदलती हुई सामाजिक व्यवस्था में कुशल आत्मनिर्देशन की योग्यता में वृद्धि, व्यक्तित्व का अभिवर्द्धन (Growth) और उसका सन्तुलित विकास करना तथा मानव-स्वभाव को समझने में शिक्षक की सहायता करना है। मानव-स्वभाव के ज्ञान के द्वारा शिक्षक बालकों को उचित निर्देश देने और उनका पथ प्रदर्शन में सफल हो सकते हैं। उचित मार्गदर्शन मिलने पर बालक सामाजिक परिस्थितियों से सामंजस्य स्थापित करने और सामाजिक दायित्वों का भली-भाँति निर्वाह करने में सफल होगा। अत: बाल विकास का उद्देश्य बालकों में सदाचार की भावना विकसित करना है। बाल विकास का उद्देश्य शिक्षक को तथ्यों (facts) और सामान्यीकरण (Generalization) से अवगत कराकर उसके कार्य में सहायता देना है, जिससे वह बालक को उसके संतुलित व्यक्तित्व के निर्माण में सहायता दे सके।

प्रश्न 3. बाल विकास की आवश्यकता पर संक्षिप्त लेख लिखिए।

उत्तर—(1) बालकों के स्वभाव को समझने में सहायक—विभिन्न आयु-स्तर पर बालकों के व्यवहार में कौन-कौन से परिवर्तन आते हैं तथा उन परिवर्तनों के क्या कारण होते हैं उनका क्या प्रभाव पड़ता है यह सब बाल-विकास बताता है इसलिए अभिभावक, अध्यापक, बाल-निदेशक बाल-मनोविज्ञान के अध्ययन से प्रत्येक आयु के बालक के व्यवहार को आसानी से समझ सकते हैं ।

(2) बालकों की शिक्षा में सहायक—बालक किस शारीरिक उम्र में कितनी मानसिक आयु रखता है या उसे रखनी चाहिए या किसी बालक की मानसिक आयु क्या है । इसका पता बाल-विकास के द्वारा किया जाता है तथा उसी के अनुसार उस बालक विशेष की शिक्षा की व्यवस्था में सहायता मिलती है । कक्षाओं के पाठ्यक्रम निर्धारण में सहायता मिलती है कि किस कक्षा में कितनी मानसिक आयु होती है उसी के अनुसार पाठ्यक्रम निर्धारण किया जाता है । विभिन्न अवस्था में बालक की ग्राही शक्ति कितनी होगी उसी के अनुसार पाठ्यक्रम निर्धारित किया जाता है ।

(3) बालक के विकास को समझने में सहायक—प्रत्येक बालक का विकास कुछ विशेष नियमों के अनुसार होता है। कुछ विशेष उम्र में विकास में परिवर्तन आते हैं उनके बारे में बाल-विकास बताता है जिससे यह ज्ञात होता है कि किस विशिष्ट उम्र में बालक का व्यवहार कैसा होना चाहिए जिससे बालक के विकास को समझा जा सकता है।

(4) बालक के व्यक्तित्व विकास को समझने में सहायता—बालक के व्यक्तित्व विकास को कौन-से तत्व प्रभावित करते हैं तथा किस प्रकार प्रभावित करते हैं। उचित व्यक्तित्व विकास के लिए कौन-कौन से तत्त्व आवश्यक हैं, कैसा वातावरण होना चाहिए, इन सबकी जानकारी बाल-विकास देता है। इसके अध्ययन से व्यक्तित्व विकास में होने वाले क्रमिक परिवर्तनों को समझा जाता है।

(5) बालक के व्यवहार नियन्त्रण में सहायता—प्रत्येक बालक अपने व्यवहार सम्बन्धी कुछ समस्याएँ उत्पन्न करता है। उन्हें नियन्त्रित करने तथा दूर करने में बाल-मनोविज्ञान सहायता करता है।

(6) बाल-निर्देशन में सहायता—बच्चों में माता-पिता, अध्यापक तथा बाल-निर्देशक जो कि बच्चों को आगे बढ़ने के लिए निर्देशित करते हैं बाल-विकास उनकी मदद करता है। बाल-विकास सिखाता है कि विभिन्न प्रकार के बालकों के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए तथा उन्हें किस प्रकार की व्यावहारिक शिक्षा देनी चाहिए जो कि उनके आगे बढ़ने में सहायक हो।

(7) सुखी पारिवारिक जीवन में सहायक—यदि बच्चे चरित्रवान उचित व्यक्तित्व वाले होते हैं तो माता-पिता तथा परिवार सुखी तथा प्रसन्न रहता है। बाल-मनोविज्ञान के अध्ययन द्वारा बालकों में इच्छित व्यवहार उत्पन्न कर पारिवारिक जीवन सुखी बनाया जा सकता है।

प्रश्न 4.बाल विकास की आवश्यकता एवं महत्व पर संक्षिप्त लेख लिखिए।

उत्तर—बाल मनोविज्ञान का अध्ययन न केवल छात्रों के लिए ही वरन् अध्यापकों के लिए भी उपयोगी है। बाल मनोविज्ञान के अभाव में कोई भी अध्यापक अपने कार्य को कुशलतापूर्वक सम्पादित नहीं कर सकता। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में बाल मनोविज्ञान का ज्ञान ही अध्यापक की सफलता का रहस्य है। अपने शिक्षण कार्य को प्रभावशाली बनाने तथा छात्रों के सीखने को सरल, सहज व रुचिकर बनाने के लिए अध्यापक को मनोविज्ञान के सिद्धान्तों को उपयोग करना अनिवार्य होता है। इस सन्दर्भ में **एलिस क्रो** के विचारों को उद्घृत किया जा सकता है—''शिक्षकों को अपने शिक्षण में उन मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का प्रयोग करना चाहिए, जो सफल शिक्षण और फलोत्पादक अधिगम के लिए अनिवार्य है।

प्रश्न 5. बालक के विकास में जो परिवर्तन होते हैं, उनका सम्बन्ध शरीर और मन दोनों से होता है, स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—बालक के विकास में जो परिवर्तन होते हैं उसका सम्बन्ध शरीर और मन दोनों से होता है क्योंकि विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जो जीवन-पर्यन्त किसी-न-किसी रूप में चलती रहती है। प्राणी के जीवन विकास में शारीरिक, मानसिक क्षमताओं के स्वरूप में जो क्रमगत परिवर्तन होते हैं, उन्हीं को विकास कहते हैं। शारीरिक विकास के साथ-साथ मानसिक विकास भी होता है। मानसिक विकास का आशय ज्ञान भण्डार में वृद्धि से है मानसिक विकास की प्रक्रिया आजीवन चलती रहती है। मानसिक विकास का अर्थ मानसिक शक्तियों का उदय होना तथा व्यक्ति में उस क्षमता का विकास होना है जिससे वह परिस्थितियों के अनुकूल अपने आपको समायोजित कर सके। मानसिक विकास के अन्तर्गत समझने की शक्ति, स्मरण करने की शक्ति, ध्यान केन्द्रित करने की क्षमता विचार, तर्क समस्या-समाधान करने की शक्ति आदि सम्मिलित है। मानसिक विकास शक्ति में होने वाली सूझ-बूझ है जिसके परिणामस्वरूप उसके व्यवहार में परिमार्जन होता है।

प्रश्न 6. शारीरिक विकास का अध्ययन क्यों जरूरी है ? दो कारण बताइए।

उत्तर—प्रत्येक अवस्था में व्यक्ति के विकास को निम्नांकित पक्षों में विभाजित किया जा सकता है—

(1) शारीरिक विकास (Physical Development),
(2) मानसिक विकास (Mental Development),
(3) संवेगात्मक विकास (Emotional Development),
(4) सामाजिक विकास (Social Development),
(5) भाषा विकास (Language Development),
(6) सृजनात्मक क्षमता का विकास (Creative Development),
(7) कल्पना, चिन्तन एवं तर्क का विकास (Imagination, Thinking and Reasoning Development)।

विकास के इन पक्षों का शैक्षिक दृष्टि से अत्यधिक महत्व है, क्योंकि बाल विकास की प्रक्रिया में इनका परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्रत्येक अवस्था में विकास के इन पक्षों पर विचार करने से यह ज्ञात हो जाता है कि विभिन्न अवस्थाओं में किस पक्ष का विकास कितनी मात्रा में, किस प्रकार और किस दिशा से होता है। अत: इन पक्षों के अन्तर्गत अध्ययन करने वाली मुख्य बातों पर विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है। इन बातों का वर्णन निम्नांकित है—

शारीरिक विकास (Physical Development)

मनुष्यों मनो शारीरिक (Psycho Physical) प्राणी है। जन्म के समय वह शारीरिक व मानसिक दोनों रूप से अविकसित होता है। आयु बढ़ने के साथ-साथ उसका शारीरिक एवं मानसिक विकास होता जाता है। शारीरिक विकास तब तक होता रहता है जब तक कि शरीर वयस्क नहीं हो जाता है। **सोरेन्सन** (Sorenson) के अनुसार, ''नवजात शिशु को शरीर तब तक अभिवृद्धि तथा विकास करता है जब तक यह एक वयस्क शरीर नहीं हो जाता है।''

प्रश्न 7. शैशवावस्था में शिक्षा का स्वरूप कैसा होना चाहिए ?

उत्तर—शैशवावस्था में शिक्षा का स्वरूप—एक बालोद्यान, दूसरा माण्टेसरी। बाल उद्यान में बच्चों को कुछ खिलौनों या क्रीड़ा उपकरणों, (जिन्हें फ्रोबेल ने उपहार कहा है) तथा शिशु गीतों (नर्सरी सौंग्स) द्वारा सामूहिक शिक्षा दी जाती है। बच्चे शिक्षा को खेल समझकर बड़ी रुचि से करते हैं और विद्यालय उनके लिए आकृष्ट का केन्द्र बन जाते हैं। बालोद्यान का स्थान धीरे-धीरे माण्टेसरी पद्धति ले रही है। माण्टेसरी का मूल आधार है ज्ञानेन्द्रियों का साधन या विकास तथा शिशु की स्वतन्त्रता है। माण्टेसरी विद्यालयों में इन्द्रिय साधना के साथ-साथ व्यावहारिक जीवन की उपयोगी शिक्षा दी जाती है।

प्रश्न 8. बाल्यावस्था में मानसिक विकास की दो विशेषताएँ लिखिए।

उत्तर—1. छठे वर्ष में मानसिक विकास—बालक आसान प्रश्नों के उत्तर दे सकता है बिना रुके 15-20 तक गिनती सुना देता है। अखबार, पत्रिका में बने चित्रों के नाम बता सकता है।

2. सातवें वर्ष में मानसिक विकास—छोटी-छोटी घटनाओं का वर्णन कर सकता है तमाम वस्तुओं में समानता एवं अन्तर बता सकते हैं। जटिल वाक्यों का प्रयोग कर सकता है।

प्रश्न 9. बाल्यावस्था जीवन का अनोखा काल है। स्पष्ट कीजिए।

उत्तर— बाल्यावस्था : जीवन का अनोखा काल

मानव-विकास की दूसरी अवस्था बाल्यावस्था है। शैशवावस्था के पश्चात् बाल्यावस्था आती है। इस अवस्था में बालक में कुछ ऐसे परिवर्तन होते हैं, जिन्हें अभिभावक और अध्यापक आसानी से नहीं समझ पाते। शैशवकाल में बालक के लिए संसार रहस्यमय होता है। उसका शरीर और मन दोनों अविकसित दशा में होते हैं, अत: वह प्रत्येक बात के लिए दूसरे पर निर्भर रहता है, परन्तु बाल्यावस्था में प्रवेश करने पर बालक आत्मनिर्भर है।

प्रश्न 10. बाल्यावस्था की प्रमुख विशेषताएँ बताइए।

उत्तर— बाल्यावस्था की प्रमुख विशेषताएँ

सर्वांगीण विकास की दृष्टि से बाल्यावस्था की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(1) शारीरिक तथा मानसिक विकास में स्थिरता, (2) मानसिक योग्यताओं में वृद्धि, (3) आत्मनिर्भरता की भावना, (4) रचनात्मक कार्यों में रुचि, (5) जिज्ञासा की प्रबलता, (6) सामूहिक प्रवृत्ति की प्रबलता, (7) सामाजिक एवं नैतिक गुणों का विकास, (8) सामूहिक खेलों में विशेष रुचि, (9) कार्म-प्रवृत्ति की न्यूनता, (10) संग्रह-प्रवृत्ति का विकास।

प्रश्न 11. बाल्यावस्था की अवधारणा एवं विविधिताएँ क्या हैं? भारतीय संदर्भ में बहुविध (Multiple) बाल्यावस्थाओं के निर्माण की व्याख्या कीजिए।

उत्तर—बाल्यावस्था एक सार्वभौमिक अवस्था है, जिसमें शारीरिक वृद्धि, भावनात्मक विकास, सीखने की जिज्ञासा और संरक्षण की आवश्यकता जैसी समानताएँ पायी जाती हैं। परन्तु सामाजिक, आर्थिक स्थिति, जाति, वर्ग, लिंग क्षेत्र (ग्रामीण-शहरी), भाषा और संस्कृति के आधार पर बाल्यावस्था के अनुभवों में व्यापक विविधताएँ दिखाई देती हैं। भारत जैसे बहु-सांस्कृतिक समाज में कार्यरत बच्चे, स्कूल जाने वाले बच्चे, आदिवासी बच्चे, शहरी मध्यमवर्गीय बच्चे आदि अलग-अलग प्रकार की बाल्यावस्थाओं का निर्माण करते हैं जिन्हें बहुविध बाल्यावस्थाएँ कहा जाता है।

प्रश्न 12. भारतीय संदर्भ में बाल्यावस्था की सामाजिक सांस्कृतिक संरचना का विश्लेषण कीजिए।

उत्तर—भारतीय समाज में परिवार, समुदाय, परम्पराएँ, धार्मिक मान्यताएँ और शिक्षा-प्रणाली बाल्यावस्था को आकार देती हैं। संयुक्त परिवार, लिंग भूमिकाएँ, अनुशासन की अपेक्षाएँ तथा सामाजिक दायित्व बच्चों के जीवन अनुभवों को प्रभावित करते हैं। इस प्रकार बाल्यावस्था केवल जैविक अवस्था न होकर सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना है।

प्रश्न 13. वैश्वीकरण के संदर्भ में बाल्यावस्था की संरचनाओं में आए परिवर्तनों की विवेचना कीजिए।

उत्तर—वैश्वीकरण ने मीडिया, तकनीक, उपभोक्तावाद और शिक्षा के माध्यम से बाल्यावस्था को नया रूप दिया है। बच्चों का जीवन अब डिजिटल उपकरणों, वैश्विक संस्कृति और प्रतिस्पर्धी शिक्षा से प्रभावित है। इससे अवसर बढ़े हैं परन्तु तनाव असमानता और सांस्कृतिक टकराव जैसी चुनौतियाँ भी उत्पन्न हुई हैं।

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1. बाल्यावस्था किस प्रकार की अवस्था है?

उत्तर—बाल्यावस्था विकासात्मक अवस्था है।

प्रश्न 2. बहुविधि बाल्यावस्थाओं का अर्थ है?

उत्तर—अनेक प्रकार की बाल्यावस्थाएँ।

प्रश्न 3. भारत में बाल्यावस्था को प्रभावित करने वाला प्रमुख कारक बताइए।

उत्तर—भारत में बाल्यावस्था को प्रभावित करने वाला प्रमुख कारक संस्कृति है।

प्रश्न 4. बाल्यावस्था की सामाजिक संरचना का आधार।

उत्तर—बाल्यावस्था की सामाजिक संरचना का आधार समाज है।

प्रश्न 5. ग्रामीण और शहरी बाल्यावस्था में अंतर का कारण बातइए।

उत्तर—ग्रामीण और शहरी बाल्यावस्था में अंतर का कारण पर्यावरण है।

प्रश्न 6. वैश्वीकरण का सीधा प्रभाव किस पर पड़ा?

उत्तर—वैश्वीकरण का सीधा प्रभाव बच्चों के जीवन-शैली पर पड़ा।

प्रश्न 7. बाल श्रम किस प्रकार की बाल्यास्था को दर्शाता है?

उत्तर—वंचित बाल्यावस्था को दर्शाता है।

प्रश्न 8. लिंग आधारित अंतर किस बाल्यावस्था को प्रभावित करता है?

उत्तर—सामाजिक बाल्यावस्था को प्रभावित करता है।

प्रश्न 9. मीडिया बाल्यावस्था को किस रूप में प्रभावित करता है?

उत्तर—मीडिया बाल्यावस्था को वैश्विक रूप में प्रभावित करता है।

प्रश्न 10. विद्यालय आधारित बाल्यावस्था किससे जुड़ी है?

उत्तर—विद्यालय आधारित बाल्यावस्था शिक्षा से जुड़ी है।

प्रश्न 11. आदिवासी बच्चों की बाल्यावस्था किससे प्रभावित होती है?

उत्तर—परम्परा से बाल्यावस्था प्रभावित होती है।

प्रश्न 12. उपभोक्तावाद किस प्रक्रिया का परिणाम है?

उत्तर—उपभोक्ता वैश्वीकरण प्रक्रिया का परिणाम है।

प्रश्न 13. बाल्यावस्था को सामाजिक निर्माण क्यों कहा जाता है?

उत्तर—क्योंकि समाज इसे आकार देता है।

प्रश्न 14. तकनीक से जुड़ी बाल्यावस्था क्या कहलाती है?

उत्तर—तकनीक से जुड़ी बाल्यावस्था डिजिटल बाल्यावस्था कहलाती है।

प्रश्न 15. बाल्यावस्था का संरक्षण किसका दायित्व है?

उत्तर—बाल्यावस्था का संरक्षण समाज और राज्य का दायित्व है।

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. बाल्यावस्था को किस रूप में देखा जाता है?
   (अ) केवल जैविक अवस्था
   (ब) सामाजिक निर्माण
   (स) आर्थिक प्रक्रिया
   (द) राजनीतिक अवधारणा।

❑ **उत्तर—(ब)**

2. 'Multiple Childhoods's का तात्पर्य है?
(अ) समान बाल्यावस्था
(ब) काल्पनिक बाल्यावस्था
(स) विविध प्रकार की बाल्यावस्थाएँ
(द) आदर्श बाल्यावस्था। ❑ उत्तर—(स)

3. भारतीय समाज में बाल्यावस्था को सबसे अधिक कौन प्रभावित करता है?
(अ) तकनीक (ब) परिवार और संस्कृति
(स) उद्योग (द) राजनीति। ❑ उत्तर—(ब)

4. बाल श्रम किस प्रकार की बाल्यावस्था को दर्शाता है?
(अ) संरक्षित (ब) विशेषाधिकार प्राप्त
(स) वंचित (द) आदर्श। ❑ उत्तर—(स)

5. वैश्वीकरण का बच्चों पर प्रभाव मुख्यत: किस माध्यम से पड़ता है?
(अ) कृषि (ब) मीडिया और तकनीक
(स) स्थानीय परम्परा (द) लोक कला। ❑ उत्तर—(ब)

6. ग्रामीण बाल्यावस्था की प्रमुख विशेषता है—
(अ) तकनीकी निर्भरता
(ब) सामुदायिक जीवन
(स) उपभोक्तावाद
(द) वैश्विक संस्कृति। ❑ उत्तर—(ब)

7. शहरी बाल्यावस्था अधिक जुड़ी होती है—
(अ) परम्परा से (ब) प्रकृति से
(स) प्रतिस्पर्द्धा से (द) लोक संकृति से।
❑ उत्तर—(स)

8. बाल्यावस्था में विविधता का मुख्य कारण है–
(अ) उम्र (ब) जाति, वर्ग, लिंग
(स) मौसम (द) भाषा मात्र। ❑ उत्तर—(ब)

9. डिजिटल उपकरणों का बढ़ता उपयोग किस बाल्यावस्था का संकेत है?
(अ) पारंपरिक (ब) ग्रामीण
(स) डिजिटल (द) आदिवासी। ❑ उत्तर—(स)

10. बाल्यावस्था की समानता किसमें पायी जाती है?
(अ) अनुभवों में
(ब) विकास की आवश्यकताओं में
(स) सामाजिक स्थिति में
(द) शिक्षा में। ❑ उत्तर—(ब)

11. भारतीय संदर्भ में बाल्यावस्था को किस रूप में देखा जाता है?
(अ) व्यक्तिगत
(ब) सामाजिक-सांस्कृतिक
(स) आर्थिक
(द) राजनीतिक। ❑ उत्तर—(ब)

12. वैश्वीकरण से बच्चों में क्या बढ़ा है?
(अ) स्थानीयता
(ब) सांस्कृतिक अलगाव
(स) उपभोक्तावादी प्रवृत्ति
(द) परम्परागत जीवन। ❑ उत्तर—(स)

13. संयुक्त परिवार का प्रभाव किस पर पड़ता है?
(अ) केवल माता-पिता पर
(ब) बाल्यावस्था पर
(स) शिक्षा पर नहीं
(द) केवल अर्थव्यवस्था पर। ❑ उत्तर—(ब)

14. बाल्यावस्था को सामाजिक निर्माण क्यों कहा जाता है?
(अ) यह जन्म से तय होती है
(ब) समाज इसे परिभाषित करता है
(स) यह प्राकृतिक नहीं
(द) यह काल्पनिक है। ❑ उत्तर—(ब)

15. आदिवासी बाल्यावस्था की विशेषता है—
(अ) तकनीकी जीवन (ब) प्रकृति से निकटता
(स) शहरीकरण (द) उपभोक्तावाद।
❑ उत्तर—(ब)

2

बाल्यावस्था और समाजीकरण

[CHILDHOOD & SOCIALIZATION]

बालक का समाजीकरण

(Socialization of Child)

बालक की शिक्षा जिन प्रमुख साधनों के द्वारा होती है, उनमें परिवार, विद्यालय व समाज का उल्लेखनीय स्थान है। प्रारम्भ में बच्चा परिवार में रहता है व परिवार के सदस्य अनौपचारिक शिक्षा के द्वारा बालक को परिवार के अनुकूल व्यवहार करना सिखाते हैं। जब बालक स्कूल जाना प्रारम्भ कर देता है तो औपचारिक शिक्षा के माध्यम से उसे समाज के अनुकूल व्यवहार करना सिखाया जाता है। परिवार और विद्यालय दोनों ही बालक को समाजीकृत करने का प्रयास करते हैं अर्थात् दोनों ही बालक को समाज के साथ समायोजित करते हुए उसके व्यवहार का परिमार्जन करते हुए समाज के अनुकूल व्यवहार करने के लिए प्रेरित करते हैं और इसी प्रक्रिया को समाजीकरण की संज्ञा दी जाती है।

समाजीकरण का अर्थ

(Meaning of Socialization)

समाजीकरण एक प्रक्रिया है (Socialization is a process) जो निरन्तर चलती रहती है। बालक जैसे ही समाज के परिवेश में प्रवेश करता है व उसके सीखने की क्षमता परिपक्व होती जाती है। वह परिवार, विद्यालय व समाज के तौर-तरीके सीखने लगता है व अपनी क्रियाओं को उन्हीं के अनुकूलन ढालने का प्रयास करता है । इसी को समाजीकरण की प्रक्रिया कहते हैं। परन्तु यहाँ यह स्पष्ट करना अनिवार्य है कि समाजीकरण का अर्थ समाज का अन्धानुकरण करना नहीं है चूँकि जैसा समाज है वैसा ही हम अनुसरण करते रहे तो समाज की विकासात्मक प्रक्रिया में एक ठहराव आ जायेगा। इसी कारण यह प्रक्रिया चयनात्मक एवं मूल्यांकनात्मक (Selective and Evaluative) प्रक्रिया है अर्थात् इस प्रक्रिया के अन्तर्गत व्यक्ति समाज के साथ जब अपना आत्मीकरण करता है और समाज में विद्यमान तौर-तरीकों का मूल्यांकन करता है तो जो समय की दृष्टि से उचित व वांछनीय है, उसका चयन करता है, अन्य को छोड़ देता है। **उदाहरणार्थ**—भारतीय समाज की एक आधारभूत विशेषता है जाति व्यवस्था परन्तु आज के समाज से हमें इसका त्याग करना होगा व जो व्यक्ति अपने आपको इन जातिगत भेदभावों में ऊँचा रख सके, वही समाजीकृत व्यक्ति कहा जायेगा।

जिस व्यक्ति का समाजीकरण हो जाता है, वह अपने व्यवहार को समाज के मूल्यों मानकों के अनुकूल ढालता है तथा ऐसे कार्यों को करने का जोखिम कभी भी नहीं उठाता जो समाज विरोधी कार्यों की श्रेणी में आते हैं और इसी कारण यह कहा जाता है कि समाजीकरण की प्रक्रिया व्यक्ति के व्यवहार को नियन्त्रित एवं प्रतिबन्धित करती है (Process of controlling & restricting human behaviour)। वास्तव में देखा जाये तो समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा बालक समाज के तौर-तरीकों को सीखता है व उन्हें अपने व्यक्तित्व का अभिन्न अंग बनाता है ।

समाजीकरण की परिभाषाएँ

(Definitions of Socialization)

विभिन्न समाजशास्त्रियों ने समाजीकरण को विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया है, जिनमें से कुछ प्रमुख निम्नलिखित हैं—

हरलॉक (Hurlock)—"सामाजिक विकास का अभिप्राय है सामाजिक आशाओं के अनुकूल व्यवहार करने की योग्यता प्राप्त करना।"

(Social development means acquisition of the ability to behave in accordance with social expections.)

हरलॉक ने समाजीकरण के सम्बन्ध में कहा है कि, "यह वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति इस प्रकार का व्यवहार करता है जिससे कि वह उस समूह के अनुकूल अपना व्यवहार करता है जिसके साथ वह अपना आत्मीकरण करता है जिससे कि सामाजिक समूह द्वारा वह एक सदस्य के रूप में स्वीकृत किया जा सके ।"

(Socialization means that the child behaves in such a way that he will fit into the social group which he wishes to be identified and will be accepted by the group as a member.)

हरलॉक के अनुसार समाजीकरण की प्रक्रिया में तीन उप-प्रक्रियाएँ सम्मिलित होती हैं—

1. उचित व्यवहार करना (Proper Performance of Behaviour)—इसका अभिप्राय है बालक सामाजिक समूह द्वारा स्वीकृत व्यवहार करे और हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि प्रत्येक सामाजिक समूह की "उचित व्यवहार" के सम्बन्धों में अपनी नियमावली होती है ।

(To behave in a manner which is approved by the social group. As a every social group has own standards of what is "Proper Behaviour".)

2. स्वीकृत सामाजिक प्रकार्यों को करना (The playing of Approved Social Roles)—समाज द्वारा स्वीकृत प्रकार्यों को सम्पादित करने से अभिप्राय है व्यक्ति उन सभी कार्यों का सम्पादन करे जो उस विशेष स्थिति के साथ जुड़े हुए हैं जिसे वह समाज में रहकर प्राप्त करता है ।"

(The behaviour which is expected to him as a person of that particular status which he has received from the society.)

3. सामाजिक अभिवृत्ति का विकास (The Development of Social Attitude)—इसका अभिप्राय है कि व्यक्ति में एकीकरण व सहयोग का भाव होना जिससे कि वह समाज के लिए सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित कर सके।

(That of becoming 'imbued' with a sense of oneness and co-operation so that he can developed a positive attitude for the society.)

1. रॉस (Ross)—"समाजीकरण सहयोग करने वाले व्यक्तियों में 'हम की भावना' का विकास करती और और उनमें एक साथ कार्य करने की इच्छा तथा क्षमता की वृद्धि करती है।"

(Socialization is the development of "we feeling" in associates and the growth in their capacity and will to act together.)

2. गसकिन एवं गसकिन (Gaskin and Gaskin)—"समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति व्यवहारों, मूल्यों एवं अपेक्षाओं को सीखता है जिससे वह समाज में विशिष्ट प्रकार्यों को सम्पादित कर सके।"

(It is the process by which an individual learns the behaviours, the values and the expectation of others that enable him to take on particualr role is the society.)

3. हैविगर्स्ट एवं न्यूगार्टन (Havighrust and Newgatesn)—"समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से बालक अपने समाज के स्वीकृत तरीकों को सीखता है तथा इस तरीकों को अपने व्यक्तित्व का अभिन्न अंग बनाता है।"

(Socialization is the process by which the child learns the ways of his society and makes these way part of his own personality.).

समाजीकरण कैसे होता है?

(How Socialization Takes Place ?)

समाजीकरण की प्रक्रिया एक सामाजिक-मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया (Socio-phychological Process) है जिसमें व्यक्ति का विकास सामाजिक संस्थाओं के अनुकूल होता है परन्तु व्यक्ति को अपने आपको भी इसके लिए तैयार करना होता है। इस प्रक्रिया में व्यक्ति निम्न प्रकार से स्वयं को संचालित करता है—

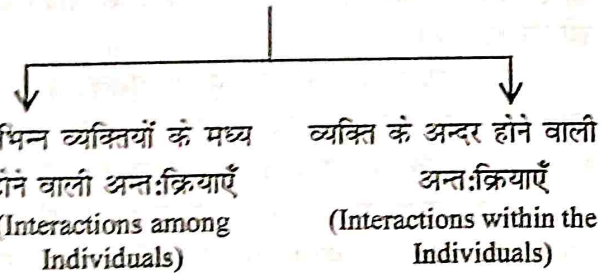

(1) विभिन्न व्यक्तियों के मध्य होने वाली क्रियाओं से व्यक्ति उचित व्यवहार करने के तौर-तरीके सीखता है । प्रत्येक व्यक्ति की यह इच्छा होती है वह समाज का स्वीकृत सदस्य बने तथा स्वीकृत सदस्य बनने के लिए यह अनिवार्य है उसका व्यवहार समाज अनुकूल हो । इस स्तर पर व्यक्ति चार प्रक्रियाओं द्वारा सीखता है—

(i) प्रतिस्पर्धा (Competion),
(ii) सहयोग (Co-operation),
(iii) संघर्ष (Conflict),
(iv) सामंजस्य (Accomodation)।

समाजीकरण के कारक

(Factors of Socialization)

समाजीकरण के सम्बन्ध में प्रमुख रूप से दो कारकों को महत्व है, जो निम्न प्रकार हैं—

(1) मनोवैज्ञानिक कारक (Psychological Factors),
(2) सामाजिक कारक (Sociologceal Factors)।

1. मनोवैज्ञानिक कारक—मनोवैज्ञानिकों की विचारधारा है कि हमारे व्यक्तित्व के तीन प्रमुख स्तर हैं—

(i) इदम् (Id),
(ii) अहम् (Ego),
(iii) परम अहम् (Super Ego)।

व्यक्ति का परम अहम् समाजीकरण की प्रक्रिया में सहयोग देता है। इस कारण यह समाजीकरण का प्रमुख कारक है । परम अहम् की विचारधारा व्यक्ति के अंदर सामाजिक चेतन (Social Consciousness) उत्पन्न करती है और समाजीकरण हेतु सामाजिक चेतना बहुत ही आवश्यक है ।

2. सामाजिक कारक—समाजशास्त्रियों का विचार है कि समाजीकरण के प्रमुख दो कारक हैं—

(i) जैविकीय-भौतिक वातावरण (Bio-physical Environment),
(ii) सामाजिक सांस्कृतिक वातावरण (Socio-cultural Environment)।

समाजीकरण या सामाजिक स्थानान्तरण विभिन्न प्रकार के वातावरण में होता है (भौगोलिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व जैविकीय)। समाज-शास्त्रियों ने समाजीकरण के कारकों को निम्न प्रकार से प्रदर्शित किया है—

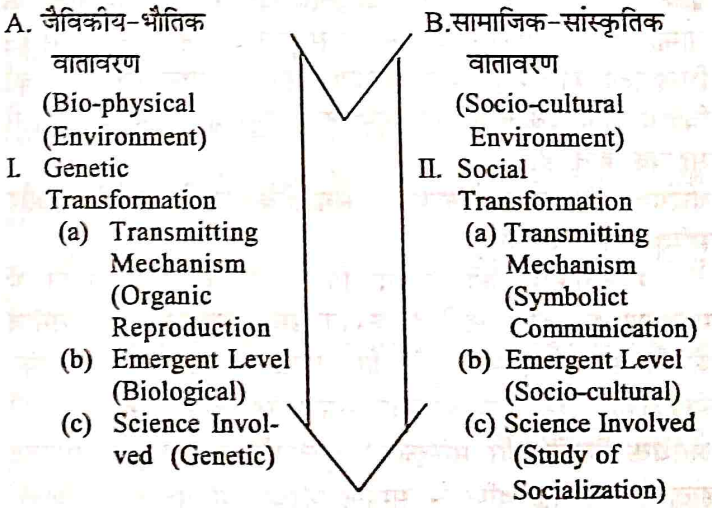

यह समाजीकरण का पूर्व स्तर है जिसमें बालक आनुवंशिक रूप में माँ-बाप से कुछ विशेषतायें ग्रहण करता है।

जब बालक जन्म लेता है, उस समय वह एक मनुष्य होता है और सामाजिक स्थानांतरण द्वारा उसे सामाजिक प्राणी बनाया जाता है।

समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से बच्चा समाज के नियम, मूल्य, आदतें और व्यवहार सीखता है। बचपन समाजीकरण का सबसे महत्वपूर्ण चरण माना जाता है क्योंकि इसी समय बच्चे का व्यक्तित्व, सामाजिक व्यवहार और सोच विकसित होती है। सामाजिक दृष्टिकोण से बचपन को समझने पर यह स्पष्ट होता है कि समाज में बच्चे के विकास और व्यवहार को प्रभावित करने वाले कई कारक मौजूद हैं।

(1) परिवार बच्चे का पहला सामाजिक संदर्भ होता है, जहाँ वह प्यार, सुरक्षा और सामाजिक नियम सीखता है।

(2) मित्र समूह और पड़ौस भी सामाजिक अनुभवों के महत्वपूर्ण स्रोत हैं।

(3) सामाजिक वर्ग, समुदाय और संस्कृति बच्चों के व्यवहार और सोच को प्रभावित करते हैं।

(4) बच्चे समाज में अपनी भूमिका और जिम्मेदारियाँ सीखते हैं।

सामाजिक दृष्टिकोण से समाजीकरण केवल व्यवहार सीखना नहीं है, बल्कि इसमें बच्चे का मूल्य, नैतिकता और सामाजिक पहचान भी शामिल है। उदाहरण के लिए, किसी बच्चे को सहयोग, आदर, सहिष्णुता और न्याय की समझ परिवार और समाज दोनों से मिलती है।

(i) ग्रामीण और शहरी समाज में बच्चों का सामाजिक अनुभव अलग होता है।

(ii) आर्थिक स्थिति और सामाजिक परिवेश से बच्चे की शिक्षा, खेल और मित्र सम्बन्ध प्रभावित होते हैं।

(iii) आर्थिक स्थिति और सामाजिक परिवेश से बच्चे की शिक्षा, खेल और मित्र सम्बन्ध प्रभावित होते हैं।

इस प्रकार, सामाजिक दृष्टिकोण से बचपन समाजीकरण की प्रक्रिया को समझना आवश्यक है, क्योंकि यह बच्चे के सामाजिक और भावनात्मक विकास का आधार बनाता है।

आर्थिक और सांस्कृतिक भिन्नताओं के कारण समाजीकरण प्रक्रिया प्रत्येक बच्चे के लिए अद्वितीय होती है। इसलिए बच्चों के सामाजिक और शैक्षिक विकास को समझने और नीति निर्माण में इन भिन्नताओं का ध्यान रखना आवश्यक है। यह दृष्टिकोण बच्चों की विविध आवश्यकताओं और सामाजिक अनुभवों को मान्यता देने में सहायक होता है।

बचपन और समाजीकरण : समाजीकरण में आर्थिक और सांस्कृतिक भिन्नताएँ

समाजीकरण की प्रक्रिया किसी भी बच्चे के जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, क्योंकि इसके माध्यम से वह समाज के नियम, मूल्य, मान्यताएँ और व्यवहार सीखता है। हालांकि, समाजीकरण हर बच्चे के लिए समान नहीं होता। यह बच्चे की **आर्थिक स्थिति और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि** से गहराई से प्रभावित होता है। आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न परिवारों में बच्चों को शिक्षा, खेलकूद और अतिरिक्त गतिविधियों के व्यापक अवसर मिलते हैं, जिससे उनका सामाजिक विकास और व्यक्तित्व समृद्ध होता है। इसके विपरीत, गरीब या वंचित परिवारों में बच्चे अक्सर घर और कार्यस्थल की जिम्मेदारियों में जल्दी शामिल होते हैं। संसाधनों की कमी उनके सीखने, खेलकूद और सामाजिक नेटवर्क तक पहुँच को सीमित कर देती है, जिससे उनके सामाजिक अनुभव अलग ढंग से निर्मित होते हैं।

सांस्कृतिक भिन्नताएँ भी सामाजीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। प्रत्येक समाज अपनी भाषा, रीति-रिवाज, धार्मिक विश्वास और परम्पराओं के अनुसार बच्चे का पालन-पोषण करता है। कुछ संस्कृतियों में आज्ञाकारिता और अनुशासन को महत्व दिया जाता है। जबकि कुछ में बच्चों की स्वतंत्रता, आत्मनिर्भरता और सृजनात्मक को बढ़ावा दिया जाता है। इससे बच्चों की सोचने-समझने की क्षमता, नैतिक मूल्य और सामाजिक व्यवहार अलग रूप में विकसित होते हैं। ग्रामीण और शहरी समाज में बच्चों के अनुभव और सीखने की प्रक्रिया में भी अंतर देखने को मिलता है।

आर्थिक और सांस्कृतिक भिन्नताओं के कारण समाजीकरण प्रक्रिया प्रत्येक बच्चे के लिए अनोखी होती है। यह भिन्नताएँ बच्चों के व्यक्तित्व, सामाजिक सम्बन्धों और जीवन के अवसरों को प्रभावित करती हैं। इसलिए समाज और शिक्षा प्रणाली को बच्चों की विविध पृष्ठभूमियों और आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए उन्हें समान अवसर और मार्गदर्शन प्रदान करना चाहिए। इस दृष्टिकोण से बच्चे न केवल व्यक्तिगत रूप से विकसित होते हैं, बल्कि समाज में सक्रिय और जिम्मेदार नागरिक बनने के लिए भी तैयार होते हैं।

पालन-पोषण, परिवार और वयस्क-बाल सम्बन्ध
(Parenting, Family and Adult-Child Relationship)

पालन-पोषण ये सचमुच हमारे लिए एक विचारणीय प्रश्न है कि हम अपनी भावी-पीढ़ी को क्या दे रहे हैं? माता-पिता, पैसा कमाने की मशीन बने हुए हैं। उनके पास अपने बच्चों को देने के लिए सब कुछ है– महँगे-महँगे गिफ्ट्स, कपड़े, मॉल-शॉपिंग, खाने-पीने के बहुत सारे मार्केट प्रोडक्ट्स बस नहीं है तो केवल 'समय'। समय जो बेहद जरूरी है। माना कि समय के साथ, माता-पिता दोनों ने ही काम करना लगभग जरूरी ही मान लिया गया है। परन्तु एक क्वालिटी टाइम तो माँ-बाप अपने बच्चों को दे सकते हैं। उनकी दैनिक क्रियाओं में उनके साथ जुड़ना, स्कूल की बातें, मित्रों की बात समझना। सुख-दुःख बाँटना और केवल उनकी ही नहीं सुनना अपने हालातों से उन्हें अवगत कराना। मुश्किल परिस्थिति में यदि आप अपने बच्चे को विश्वास में लें तो वो आपका एक बहुत बड़ा सम्बल बन सकता है।

आवश्यकता है कि उसके मन को समझने की, उसके सपनों को सहेजने की और उसके आने वाले कल के जीवन में आशा के नये रंग भरने की।

क्योंकि माता-पिता के हाथ में वो तूलिका है जो बच्चों के सपनों को साकार भी कर सकते हैं और उसमें रंग भी भर सकते हैं। इतिहास को झाँक कर देखें तो जहाँ शिवाजी, वीर शिवाजी माँ जीजाबाई की वजह से बने। नन्हीं इन्दिरा भारत की लौह महिला इन्दिरा अपने पिता पं. जवाहरलाल नेहरू की वजह से बनीं। बचपन के सम्बन्ध में बहुत-सी धारणाएँ रहीं हैं लेकिन वो आज एक मिथ्या साबित हुई हैं। सबसे बड़ी धारणा—**''बालक को दण्ड देकर सुधारा जा सकता है।''** क्या सचमुच उचित है? क्या बालक में और जेल में बंद कैदी में कोई अंतर नहीं। बालक के साथ दण्डात्मक व्यवहार कर हम कुछ समय के लिए उसकी भावनाओं को दमित

कर सकते हैं। परन्तु भावात्मक रूप से उसे नियन्त्रित या संतुलित नहीं कर सकते। उसकी दबी हुई भावनाएँ कभी भी उग्र रूप ले सकती हैं। कहा भी गया है कि बालक तो स्वयं में ऊर्जा का भण्डार है। अपार ऊर्जा है उसमें। आवश्यकता है उस नकारात्मक को सकारात्मक में बदलने की। एक बढ़ता हुआ बालक बहुत-से परिवर्तनों से गुजरता है। वो मानसिक भी होते हैं, शारीरिक भी और सामाजिक भी। इतने सारे परिवर्तनों को झेलता हुआ बालक दण्ड का प्रयोग करने में ढीठ और विद्रोही बन जाता है। इसलिए वर्तमान शिक्षा प्रणाली ने भी इस तथ्य को मान लिया है कि बालक को उचित परामर्श व निर्देशन देकर शिक्षित किया जाए न कि दण्ड देकर, उसे शिक्षा देने का प्रयास किया जाए। इसका ये अभिप्राय भी नहीं है कि दण्ड देकर, उसे शिक्षा देने का प्रयास किया जाए। इसका ये अभिप्राय तो नहीं है कि माता-पिता या शिक्षक बालक की हर उचित-अनुचित माँग को मानें नहीं। जरूरत पड़ने पर डाँट-फटकार और तिरस्कारपूर्ण व्यवहार भी करना पड़ता है परन्तु एक सीमित मात्रा में।

पालन-पोषण (Parenting)

पालन-पोषण बच्चों के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और नैतिक विकास की दिशा में माता-पिता या अभिभावकों द्वारा किया गया मार्गदर्शन है। यह सिर्फ बच्चों की देखभाल और सुरक्षा तक सीमित नहीं है, बल्कि बच्चों के मूल्य, आदतें, सामाजिक व्यवहार और निर्णय लेने की क्षमता को भी प्रभावित करता है। पालन-पोषण के विभिन्न प्रकार होते हैं; जैसे— लोकतान्त्रिक, autoritative, authoritarian और उदासीन।

(1) प्रेमपूर्ण और सहायक पालन-पोषण बच्चों में आत्मविश्वास, सामाजिक समझ और सृजनात्मकता बढ़ाता है।

(2) अत्यधिक कठोर या उपेक्षित पालन-पोषण से बच्चों में असुरक्षा, भय और मानसिक तनाव उत्पन्न हो सकते हैं।

(3) सहभागी और लोकतान्त्रिक पालन-पोषण बच्चों को निर्णय लेने और समस्याओं को हल करने की क्षमता देता है।

(4) सांस्कृतिक और सामाजिक परम्पराएँ पालन-पोषण के तरीकों को प्रभावित करती हैं।

सकारात्मक और संतुलित पालन-पोषण बच्चों के संज्ञानात्मक और भावनात्मक विकास के लिए आधारशिला का काम करता है।

परिवार (Family)

परिवार बच्चों को पहला और सबसे प्रभावशाली सामाजिक संस्थान है। यह बच्चों को प्रेम, सुरक्षा और सामाजिक नियमों का अनुभव करता है। परिवार में बच्चे अपनी पहचान, सामाजिक भूमिका और मूल्यों को सीखते हैं।

(1) परिवार बच्चे को सामाजिक और नैतिक जिम्मेदारियों के लिए तैयार करता है।

(2) माता-पिता, भाई-बहन और अन्य पारिवारिक सदस्य बच्चों को व्यवहार और दृष्टिकोण को प्रभावित करते हैं।

(3) परिवार में संवाद, सहयोग और स्नेह बच्चों के सामाजिक और भावनात्मक विकास में मदद करता है।

(4) संयुक्त परिवार और न्यूक्लियर परिवार में बच्चों के सीखने और अनुभवों का तरीका भिन्न होता है।

(5) परिवार सामाजिक समर्थन और सुरक्षा प्रदान करता है, जो बच्चों की मानसिक स्वास्थ्य और स्थिरता के लिए आवश्यक है।

परिवार बच्चों के जीवन में सबसे स्थायी प्रभाव डालता है और समाजीकरण की प्रक्रिया में उनका पहला शिक्षक होता है।

वयस्क-बाल सम्बन्ध (Adult-Child Relationships)

वयस्क-बाल सम्बन्ध बच्चे और वयस्कों के बीच स्थापित सम्बन्ध हैं, जो बच्चे के सामाजिक, भावनात्मक और नैतिक विकास में निर्णायक भूमिका निभाते हैं। शिक्षक, माता-पिता, परिवार के बुजुर्ग और अन्य वयस्क बच्चे के लिए मार्गदर्शक बनते हैं।

(1) सकारात्मक वयस्क-बाल सम्बन्ध को सुरक्षा और आत्मविश्वास प्रदान करता है।

(2) संवाद और मार्गदर्शन से बच्चे में सामाजिक समझ और जिम्मेदारी का विकास होता है।

(3) अनुशासन और स्नेह का संतुलन बच्चे के व्यक्तित्व और व्यवहार को संतुलित करता है।

(4) वयस्कों के आदर्श और व्यवहार बच्चों के सामाजिक और नैतिक विकास को प्रभावित करते हैं।

(5) शिक्षक और अभिभावक दोनों मिलकर बच्चे के जीवन में नैतिक, सामाजिक और बौद्धिक मूल्यों की नींव रखते हैं।

स्वस्थ और संवेदनशील वयस्क-बाल सम्बन्ध बच्चों के संज्ञानात्मक, भावनात्मक और सामाजिक विकास के लिए आधारभूत भूमिका निभाते हैं और उन्हें समाज में सक्रिय और जिम्मेदार नागरिक बनने के लिए तैयार करते हैं।

बाल पालन-पोषण
(Child Rearing Practices)

बाल पालन-पोषण की प्रथाएँ समाज, संस्कृति और परिवार के दृष्टिकोण से प्रभावित होती है। एक संतुलित और संवेदनशील पालन-पोषण बच्चे को शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और नैतिक दृष्टि से विकसित करता है। यह बच्चे के संज्ञानात्मक कौशल, सामाजिक समझ और भावनात्मक स्थिरता को मजबूत करता है। इसलिए बाल पालन-पोषण केवल बच्चे की सुरक्षा और पोषण तक सीमित नहीं रहना चाहिए, बल्कि इसे **समग्र विकास** की दिशा में सोच-समझकर लागू किया जाना चाहिए।

(1) बच्चे के **व्यक्तित्व निर्माण** में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

(2) **सामाजिक व्यवहार और नैतिक मूल्य** विकसित करने में मदद करता है।

(3) बच्चे को **जिम्मेदार, स्वतंत्र और आत्मविश्वासी** बनाने में सहायक है।

(4) अच्छे पालन-पोषण से बच्चे में **भावनात्मक स्थिरता और मानसिक स्वास्थ्य** बढ़ता है।

(5) यह बच्चों के **शैक्षिक, सामाजिक और भावनात्मक विकास** का आधार बनता है।

बाल पालन-पोषण की प्रथाओं का महत्व (Importance of Child Rearing Practices)

बाल पालन-पोषण की प्रथाएँ बच्चे के **समग्र विकास** के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह केवल उसकी शारीरिक सुरक्षा और पोषण

तक सीमित नहीं रहती, बल्कि इसके माध्यम से बच्चे का **सामाजिक, मानसिक, बौद्धिक और नैतिक विकास** सुनिश्चित होता है। इसके महत्व को विस्तार से समझा जा सकता है—

1. व्यक्तित्व विकास (Personality Development)—संतुलित पालन-पोषण बच्चों में आत्मविश्वास, सकारात्मक दृष्टिकोण और आत्म-निर्भरता विकसित करता है। यह बच्चे को अपने विचारों और भावनाओं को व्यक्त करने में सक्षम बनाता है।

2. सामाजिक व्यववहार और सहयोग (Social behaviour and Cooperation)—बच्चों को समाज में अपने व्यवहार और दूसरों के साथ सहयोग करने की क्षमता सीखने में मदद मिलती है। यह उन्हें सामाजिक नियमों और अनुशासन के अनुसार जीवन जीना सिखाता है।

3. नैतिक और मूल्य आधारित विकास (Moral and Value Development)—अच्छे पालन-पोषण से बच्चे में नैतिकता, ईमानदारी, सहिष्णुता और न्याय की भावना विकसित होती है। यह बच्चों को सही और गलत का भेद समझने में मदद करता है।

4. मानसिक स्वास्थ्य और भावनात्मक स्थिरता (Mental Health and Emotional Stability)—प्रेम और स्नेहपूर्ण पालन-पोषण बच्चे में मानसिक स्थिरता और आत्म-स्वीकृति को बढ़ाता है। यह तनाव, भय और असुरक्षा को कम करता है।

5. शैक्षिक और बौद्धिक विकास (Educational and Cognitive Development)—बच्चों में सीखने की रुचि, समस्या-समाधान की क्षमता और रचनात्मक सोच विकसित होती है। यह उनकी बौद्धिक क्षमताओं को निखारता है।

6. सामाजिक जिम्मेदारी और अनुशासन (Social Responsibility and Discipline)—पालन-पोषण बच्चों को नियमों और सामाजिक जिम्मेदारियों का पालन करना सिखाता है। यह उन्हें समाज में सक्रिय और जिम्मेदार नागरिक बनने के लिए तैयार करता है।

7. सृजनात्मकता और आत्म-अभिव्यक्ति (Creativity and Self- Expression)—स्वतंत्रता और सहयोग के साथ पालन-पोषण बच्चों की कल्पनाशीलता और रचनात्मक सोच को प्रोत्साहित करता है।

बाल पालन-पोषण केवल शारीरिक सुरक्षा तक सीमित नहीं है, बल्कि यह बच्चे के सम्पूर्ण व्यक्तित्व और सामाजिक जीवन की नींव है। इसका प्रभाव जीवनभर रहता है और यह बच्चे को मानसिक, सामाजिक, बौद्धिक और भावनात्मक रूप से मजबूत करता है। संतुलित और संवेदनशील पालन-पोषण ही बच्चे के **सफल, जिम्मेदार और खुशहाल जीवन** की कुंजी है।

बाल श्रम
(Child Labour)

बाल श्रम उस स्थिति को कहते हैं जब बच्चे, विशेषकर 14 वर्ष से कम आयु के, शिक्षा, खेल और सामान्य विकास से वंचित होकर किसी प्रकार के आर्थिक या व्यावसायिक काम में लग जाते हैं। इसमें शारीरिक, मानसिक और सामाजिक स्वास्थ्य को नुकसान पहुँचाने वाले काम शामिल होते हैं। बाल श्रम बच्चों के प्राकृतिक विकास और उनके अधिकारों का हनन है।

(i) बाल श्रम शिक्षा के अधिकार का उल्लंघन करता है।

(ii) यह बच्चों के मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य पर गंभीर प्रभाव डालता है।

(iii) बाल श्रम गरीबी, असमानता और सामाजिक अनुशासन की कमी के कारण बढ़ता है।

बाल श्रम के कारण (Causes of Child Labour)

1. आर्थिक कारण—गरीब परिवारों में बच्चों को परिवार की आय बढ़ाने के लिए काम करना पड़ता है।

2. शिक्षा की कमी—शिक्षा का अभाव या स्कूल तक पहुँच न होना।

3. सामाजिक और सांस्कृतिक कारण—कुछ समुदायों में बच्चों को जल्दी काम करने के लिए प्रेरित किया जाता है।

4. श्रम बाजार की माँग—छोटे बच्चों की सस्ती और अधिक मेहनती श्रम शक्ति का दुरुपयोग।

बाल श्रम के प्रकार (Types of Child Labour)

1. घरेलू बाल श्रम—घर के काम, घरेलू काम या परिवार के व्यापार में बच्चों को लगाना।

2. औद्योगिक बाल श्रम—कारखानों, निर्माण स्थलों या फैक्ट्रियों में बच्चों का काम।

3. सड़क पर काम—दुकानों, ठेलों या खेतों में बच्चों को काम करना।

4. गैर-कानूनी काम—तम्बाकू, शराब, मादक पदार्थ या असुरक्षित परिस्थितियों में बच्चों का काम।

बाल श्रम रोकने के उपाय (Prevention of Child Labour)

1. शिक्षा का अधिकार सुनिश्चित करना—सभी बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध करना।

2. कानूनी उपाय—बाल श्रम पर रोक लगाने वाले कड़े कानून और नीतियाँ लागू करना।

3. आर्थिक सहायता—गरीब परिवारों की वित्तीय सहायता, रोजगार और सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना।

4. जागरुकता अभियान—समाज में बाल श्रम के हानिकारक प्रभावों के बारे में जागरूकता फैलाना।

5. सामुदायिक निगरानी—स्थानीय संगठन और समाज के लोग बच्चों के हित की निगरानी करें।

बाल श्रम का दण्ड
(Punishment for Child Labour)

भारत में बाल श्रम पर कड़े कानून है। Child Labour (Prohibition and Regulation) Act, 1986 और Right to Education Act, 2009 के तहत बाल श्रम निषिद्ध है।

(i) 14 वर्ष से कम उम्र बच्चों को किसी भी उद्योग या रोजगार में लगाने पर कानूनी कार्यवाही।

(ii) माता-पिता या नियोक्ता पर जुर्माना और जेल की सजा।

(iii) गंभीर मामले में 2 साल तक की सजा और भारी जुर्माना।

(iv) राज्य और केन्द्र सरकार द्वारा निगरानी और बच्चों को पुनर्वास के उपाय।

बाल श्रम बच्चों के अधिकार, शिक्षा और विकास का उल्लंघन है। इसे रोकने के लिए शिक्षा, कानूनी प्रावधान, जागरूकता और आर्थिक सहायता आवश्यक है। समाज, परिवार और सरकार को मिलकर यह सुनिश्चित करना चाहिए कि सभी बच्चे सुरक्षित, स्वस्थ और शिक्षित वातावरण में बड़े हों। बाल श्रम की समाप्ति केवल बच्चों के भविष्य के लिए नहीं, बल्कि समाज के समग्र विकास के लिए भी आवश्यक है।

बाल श्रम के हानिकारक प्रभाव (Harmful Effects of Child Labour)

1. शारीरिक स्वास्थ्य—कम उम्र में भारी काम करने से शारीरिक चोटें और स्वास्थ्य समस्याएँ।

2. मानसिक स्वास्थ्य—तनाव, डर और मानसिक दबाव।

3. शैक्षिक नुकसान—स्कूल और पढ़ाई से वंचित रहना।

4. सामाजिक विकास पर प्रभाव—सामाजिक कौशल और खेल- कूद का अभाव।

दण्ड और सजा के प्रावधान (Penalties and Punishment)

1. जुर्माना (Fine) :

(i) बाल श्रम के लिए दोषी पाए गए नियोक्ता या अभिभावक पर 20,000 रुपये से 50,000 रुपये तक का जुर्माना हो सकता है।

(ii) पुनरावृत्ति पर जुर्माना बढ़कर 1,00,000 (एक लाख) रुपये तक हो सकता है।

2. जेल की सजा (Imprisonment) :

(i) गम्भीर मामलों में दोषी को 6 महीने से 2 साल तक की जेल हो सकती है।

(ii) बच्चों को खतरनाक या गैरकानूनी काम पर लगाने वाले को विशेष सजा दी जाती है।

3. सुधारात्मक उपाय (Corrective Measures) :

(i) बच्चों को बाल सुधार गृह, स्कूल या पुनर्वास केन्द्रों में भेजा जाता है।

(ii) बाल मजदूरी से प्रभावित बच्चों को शिक्षा और कौशल विकास कार्यक्रमों में शामिल किया जा सकता है।

मुख्य विशेषताएँ (Key Features of Punishment)

(i) दोषी को अपराध की गंभीरता के अनुसार **सजा और जुर्माना** देना।

(ii) बच्चों की सुरक्षा और पुनर्वास प्राथमिकता।

(iii) न्याय प्रक्रिया में बच्चों के मानसिक और भावनात्मक संरक्षण का ध्यान।

(iv) बाल शोषण के मामलों में **कड़ी निगरानी और त्वरित कार्यवाही** अनिवार्य।

बाल शोषण पर सजा का उद्देश्य केवल अपराधियों को दण्डित करना नहीं है, बल्कि समाज में **सावधानी, जागरूकता और बच्चों की सुरक्षा** सुनिश्चित करना है। यह बच्चों को सुरक्षित, स्वस्थ और सम्मानपूर्ण वातावरण देने के लिए अनिवार्य है। बाल शोषण के मामलों में **कड़ी कानूनी कार्यवाही, सुधारात्मक उपाय और पुनर्वास** के माध्यम से समाज बच्चों के भविष्य को संरक्षित कर सकता है।

गरीबी के संदर्भ में बचपन
(Childhood in the Context of Poverty)

गरीबी के संदर्भ में बचपन का अर्थ है ऐसा बचपन जिसमें बच्चे की जीवनशैली, विकास और अवसर गरीबी या आर्थिक तंगी के कारण सीमित हो जाते हैं। गरीबी केवल वित्तीय कमी नहीं है; यह बच्चों के शारीरिक स्वास्थ्य, शिक्षा, पोषण, सामाजिक विकास और मानसिक स्वास्थ्य को भी प्रभावित करती है। ऐसे बच्चों के पास खेलने, सीखने, स्वस्थ रहने और सामाजिक रूप से विकसित होने के पर्याप्त अवसर नहीं होते।

(i) गरीब परिवारों में बच्चे के शारीरिक और मानसिक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

(ii) गरीबी बच्चों को शिक्षा, खेल, पोषण और सुरक्षित वातावरण से वंचित कर देती है।

(iii) ऐसे बच्चे समाजीकरण की प्रक्रिया में बाधाओं का सामना करते हैं।

गरीबी के कारण बचपन प्रभावित करने वाले तरीके (How Poverty Affects Childhood)

1. शारीरिक विकास पर प्रभाव (Impact on Physicial Development)

(i) पर्याप्त भोजन और पोषण की कमी से कुपोषण होता है।

(ii) स्वास्थ्य समस्याएँ, जैसे–कमजोर इम्यून सिस्टम, बीमारियों का जोखिम बढ़ जाना।

(iii) विकास में रुकावट, शारीरिक कमजोरी और ऊँचाई-भार में कमी।

2. शैक्षिक प्रभाव (Educational Impact)

(i) गरीब बच्चों को स्कूल छोड़ने या काम करने के लिए मजबूर होना पड़ता है।

(ii) पढ़ाई में बाधा, सीखने की कमी और भविष्य के अवसर सीमित होते हैं।

(iii) बाल श्रम और शिक्षा की अनुपलब्धता बच्चों के विकास को धीमा कर देती है।

3. सामाजिक और भावनात्मक प्रभाव (Social & Emotional Impact)

(i) गरीब बच्चों में तनाव, चिंता और आत्म-सम्मान की कमी पैदा करती है।

(ii) सामाजिक अलगाव और दोस्तों या खेलकूद के अवसरों की कमी।

(iii) मानसिक स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव, जैसे–अवसाद और भय।

4. बाल श्रम और बाल शोषण का खतरा (Child Labour & Abuse Risk) :

(i) गरीब बच्चे परिवार की आर्थिक मदद के लिए काम करने के लिए मजबूर होते हैं।

(ii) बच्चों को शारीरिक और यौन शोषण का खतरा बढ़ जाता है।

(iii) सामाजिक और कानूनी सुरक्षा के अभाव में बच्चे असुरक्षित रहते हैं।

5. सामाजिक असमानता और अवसरों की कमी (Social Inequality & Lack of Opportunities) :

(i) गरीबी बच्चों को समान अवसर नहीं देती।

(ii) शिक्षा, खेल, स्वास्थ्य और कौशल विकास में बाधा।

(iii) सामाजिक विकास और कैरियर संभावनाएँ सीमित होती हैं।

गरीबी के प्रभाव को कम करने के उपाय (Measures to Mitigate Poverty's Impact on Childhood)

1. शिक्षा का अधिकार (Right to Education) :

(i) सभी बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध कराना।

(ii) स्कूल में छात्रवृत्ति और छात्र पोषण कार्यक्रमों की व्यवस्था।

2. स्वास्थ्य और पोषण (Health & Nutrition) :

(i) बच्चों के लिए स्वस्थ भोजन, टीकाकरण और स्वास्थ्य देखभाल उपलब्ध कराना।

(ii) कुपोषण और रोगों को रोकने के लिए सरकारी योजनाएँ।

3. सामाजिक सुरक्षा और आर्थिक सहायता (Social Security & Financial Aid) :

(i) गरीब परिवारों को आर्थिक सहायता, रोजगार और सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना।

(ii) बच्चों को बाल श्रम और शोषण से बचाने के लिए कार्यक्रम।

4. सामुदायिक और मानसिक सहायता (Community & Pshychological Support)

(i) बच्चों के मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य के लिए काउंसलिंग।

(ii) समाज और परिवार में बच्चों की सुरक्षा और विकास पर ध्यान।

5. बाल अधिकारों का संरक्षण (Protection of Child Rights) :

(i) बाल श्रम, बाल शोषण और बाल उपेक्षा से बच्चों की रक्षा करना।

(ii) सरकारी और गैर-सरकारी संगठन बच्चों के अधिकारों की निगरानी।

गरीबी का प्रभाव बच्चों के शारीरिक, मानसिक, शैक्षिक और सामाजिक विकास पर गहरा पड़ता है। यह बच्चों के बचपन को सीमित और असुरक्षित बनाता है। इसलिए समाज, परिवार और सरकार को मिलकर यह सुनिश्चित करना चाहिए कि सभी बच्चे **गरीबी की स्थिति से मुक्त होकर सुरक्षित, स्वस्थ और शिक्षित वातावरण में बड़े हों**। बाल विकास और समाजीकरण के लिए गरीबी हटाना आवश्यक है, क्योंकि बच्चों का सुरक्षित और समर्थ बचपन ही समाज के उज्ज्वल भविष्य की नींव है।

समाजीकरण के संदर्भ में स्कूलिंग : सहपाठी प्रभाव (Schooling as a Context of Socialization : Peer Influence)

सहपाठी प्रभाव (Peer Influence) का अर्थ है कि बच्चे अपने सहपाठियों (Peers) से मिलने-जुलने और सामाजिक सम्बन्ध बनाने के माध्यम से अपने व्यवहार मूल्य, आदतें, विश्वास और सामाजिक कौशल को सीखते और विकसित करते हैं। स्कूल केवल शिक्षा का स्थान नहीं है, बल्कि यह **सामाजिक सीखने और समाजीकरण का प्रमुख माध्यम** भी है। सहपाठी समूह बच्चों के विचारों, निर्णयों और सामाजिक पहचान को प्रभावित करता है।

(i) सहपाठी प्रभाव बच्चों के **व्यवहार, रुचियों और व्यक्तित्व** को आकार देता है।

(ii) यह बच्चों को समाजीकरण की प्रक्रिया में **संगत और असंगत प्रभाव** दोनों प्रदान करता है।

(iii) सहपाठी समूह बच्चे को सहयोग, प्रतिस्पर्द्धा और सामाजिक जिम्मेदारी सिखाता है।

सहपाठी प्रभाव के प्रकार (Types of Peer Influence)

1. सकारात्मक प्रभाव (Positive Influence)

(i) सहपाठी बच्चों को अच्छे आचरण, अध्ययन में प्रोत्साहन और सामाजिक कौशल सिखाते हैं।

(ii) समूह में खेल, कला, सांस्कृतिक कार्यक्रम और सहयोगी गतिविधियों बच्चों के आत्मविश्वास और टीम भावना को बढ़ाती है।

(iii) सकारात्मक आदतों जैसे समय पर स्कूल जाना, अनुशासन और नैतिकता का विकास।

2. नकारात्मक प्रभाव (Negative Influence)

(i) कभी-कभी सहपाठी समूह बच्चों पर दबाव डालकर अनुचित या हानिकारक गतिविधियों में शामिल कर सकता है।

(ii) उदाहरण : अनुचित व्यवहार, स्कूल में अनियमितता, नकल, धूम्रपान या नशीले पदार्थों की ओर आकर्षण।

(iii) यह बच्चों के निर्णय लेने की स्वतंत्रता और नैतिक मूल्य पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है।

3. सांवेगिक और भावनात्मक प्रभाव (Emotional & Social Influence)

(i) बच्चे अपने सहपाठियों की स्वीकृति पाने के लिए अपने व्यवहार को बदल सकते हैं।

(ii) समूह में अपनापन और मित्रता बच्चे के आत्म-सम्मान और भावनात्मक स्थिरता के लिए महत्वपूर्ण होती है।

स्कूलिंग में सहपाठी प्रभाव के महत्व (Importance of Peer influence in Schooling)

1. सामाजिक कौशल का विकास (Development of Social Skills)

(i) सहपाठियों के साथ बातचीत, सहयोग और विरोध की प्रक्रिया से बच्चे अपने सामाजिक कौशल सीखते हैं।

2. टीम वर्क और नेतृत्व क्षमता (Team work & Leadership)

(i) समूह गतिविधियाँ जैसे–प्रोजेक्टस, खेल और प्रतियोगिताएँ नेतृत्व और टीम भावना विकसित करती हैं।

3. स्वतंत्रता और निर्णय क्षमता (Independence & Decision Making)

(i) सहपाठी समूह बच्चों को निर्णय लेने, समस्याओं का समाधान करने और अपनी राय व्यक्त करने का अवसर देता है।

4. सकारात्मक आदतों और प्रेरणा (Positive Habits & Motivation)

(i) अच्छे सहपाठियों का साथ बच्चों को पढ़ाई, खेल और नैतिकता में प्रेरित करता है।

5. सामाजिक पहचान और आत्म-सम्मान (Social Identity & Self- Esteem)

(i) बच्चों की समूह में पहचान और स्वीकार्यता मिलने से आत्म-विश्वास बढ़ता है।

सहपाठी प्रभाव के नियंत्रण और प्रबन्धन (Managing Peer Influence)

1. शिक्षक और अभिभावक की भूमिका :

(i) बच्चों को सकारात्मक समूह का हिस्सा बनाने के लिए मार्गदर्शन करना।

(ii) नकारात्मक व्यवहार को पहचान कर उसे सुधारने के उपाय अपनाना।

2. सकारात्मक गतिविधियाँ और समूह निर्माण :

(i) खेल, सांस्कृतिक कार्यक्रम, प्रोजेक्ट्स और समूह चर्चा में भागीदारी।

(ii) बच्चों को जिम्मेदार समूह गतिविधियों में शामिल करना।

3. सहपाठी शिक्षा :

(i) बच्चों को अपने सहपाठियों से सीखने और सिखाने के अवसर देना।

(ii) सकारात्मक आदतों और नैतिक मूल्यों के लिए सहपाठी प्रेरणा का प्रयोग।

4. भावनात्मक और मानसिक समर्थन

(i) बच्चों को सिखाना कि समूह दबाव के बावजूद सही निर्णय लेना आवश्यक है।

(ii) आत्म-सम्मान और स्वावलंबन की भावना को मजबूत करना।

स्कूल में सहपाठी प्रभाव समाजीकरण की प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। यह बच्चों के **व्यक्तित्व, सामाजिक कौशल, निर्णय क्षमता और नैतिक मूल्यों** को प्रभावित करता है। सकारात्मक सहपाठी प्रभाव बच्चों को शिक्षा, खेल और सामाजिक सहयोग और भावनात्मक स्थिरता में मदद करता है, जबकि नकारात्मक प्रभाव अवांछनीय व्यवहार और मानसिक दबाव पैदा कर सकता है। इसलिए शिक्षक और अभिभावकों का दायित्व है कि वे बच्चों को **सकारात्मक समूह गतिविधियों और सुरक्षित सामाजिक वातावरण** में शामिल करें ताकि सहपाठी प्रभाव का अधिकतम लाभ बच्चे के विकास के लिए सुनिश्चित हो।

समाजीकरण के संदर्भ में स्कूलिंग : स्कूल संस्कृति (Schooling as a Context of Socialization : School Culture)

स्कूल संस्कृति (School Culture) का अर्थ है स्कूल में मौजूद **सामूहिक मूल्य, मान्यताएँ, नियम, परम्पराएँ, आदतें और व्यवहार** जो बच्चों के सामाजिक और शैक्षिक अनुभव को आकार देते हैं। यह केवल स्कूल के भवन या कक्षाओं तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें **शिक्षक-छात्र सम्बन्ध, सहपाठी प्रभाव, पाठ्यक्रम, स्कूल की गति- विधियाँ और सामाजिक मानक** शामिल होते हैं। स्कूल संस्कृति बच्चों के व्यक्तित्व, सामाजिक कौशल और मूल्य विकास में गहरा प्रभाव डालती है।

(i) स्कूल संस्कृति बच्चों के **सामाजीकरण** का माध्यम है।

(ii) यह उनके **सामाजिक मूल्य, आदतें, नैतिकता और व्यवहार** को प्रभावित करती है।

(i) सकारात्मक स्कूल संस्कृति बच्चों के **सुरक्षित और सहायक वातावरण** में विकास को बढ़ावा देती है।

स्कूल संस्कृति के घटक (Components of School Culture)

1. मूल्य और विश्वास (Values and Beliefs) :

(i) स्कूल में बच्चों को **सम्मान, सहयोग, अनुशासन और ईमानदारी** जैसे मूल्यों की शिक्षा दी जाती है।

(ii) शिक्षक और प्रशासन के दृष्टिकोण से बच्चों में **सकारात्मक दृष्टिकोण** विकसित होता है।

2. नियम और अनुशासन (Rules and Discipline) :

(i) स्कूल के नियम बच्चों को **नियमों का पालन, समय पालन और जिम्मेदारी** सिखाते हैं।

(ii) अनुशासन से बच्चों में आत्म-नियंत्रण और सामाजिक जिम्मेदारी बढ़ती है।

3. सांस्कृतिक और सामाजिक गतिविधियाँ (Cultural and Social Activities) :

(i) खेल, कला, नाटक, विज्ञान प्रदर्शनी, वार्षिक कार्यक्रम बच्चों के **सामाजिक कौशल, टीमवर्क और आत्मविश्वास** को बढ़ाते हैं।

(ii) यह बच्चों में **सृजनात्मकता और नेतृत्व क्षमता** को भी विकसित करता है।

4. सहपाठी और शिक्षक प्रभाव (Peer and Teacher Influence)

(i) सहपाठी समूह और शिक्षक बच्चों, के **व्यवहार, आदतें और मूल्य** को आकार देते हैं।

(ii) सकारात्मक सहयोग और मार्गदर्शन बच्चों के मानसिक और सामाजिक विकास में मदद करता है।

5. परम्पराएँ और रीति-रिवाज (Traditions and Routines) :

(i) स्कूल में सुबह की प्रार्थना, सम्मान कार्यक्रम, पुरस्कार वितरण जैसी गतिविधियाँ बच्चों को **सामूहि पहचान और जिम्मेदारी** सिखाती है।

(ii) यह बच्चों के आत्म-विश्वास, निर्णय क्षमता और सामजिक समझ को प्रभावित करते हैं।

6. शिक्षक-छात्र सम्बन्ध (Teacher-Student Relationship) :

(i) संवेदनशील और मार्गदर्शक शिक्षक बच्चों को **सुरक्षित वातावरण और सीखने की प्रेरणा** देते हैं।

(ii) शिक्षक बच्चों के आत्मविश्वास, निर्णय क्षमता और सामाजिक समझ को प्रभावित करते हैं।

स्कूल संस्कृति के महत्व (Importance of School Culture)

1. व्यक्तित्व और सामाजिक कौशल का विकास (Personality & Social Skills) :

(i) स्कूल संस्कृति बच्चों को सामाजिक व्यवहार, आत्मविश्वास और नेतृत्व क्षमता सिखाती है।

2. नैतिक और मूल्य आधारित शिक्षा (Moral & Value Education)

(i) स्कूल आदतें और नियम बच्चों में **ईमानदारी, सहिष्णुता और सहयोग** के मूल्य विकसित करते हैं।

3. सकारात्मक सीखने का वातावरण (Positive Learning & Environment) :

(i) सहायक और सुरक्षित वातावरण बच्चों के **शिक्षा, खेल और सांस्कृतिक गतिविधियों** में भाग लेने के लिए प्रेरित करता है।

4. सामाजिक पहचान और समूह भावना (Social Identity & Group Spirit) :

(i) स्कूल की परम्पराएँ और नियम बच्चों में **समूह में अपनापन, जिम्मेदारी और सहयोग की भावना** विकसित करते हैं।

5. सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभाव (Positive & Negative Effects)

(i) सकारात्मक संस्कृति बच्चों को अनुशासन, सहयोग और नैतिक मूल्य सिखाती है।

(ii) नकारात्मक संस्कृति में प्रतिस्पर्धा, डर या असमानता बच्चों पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकती है।

स्कूल संस्कृति को मजबूत बनाने के उपाय (Ways to Strengthen School Culture)

1. सकारात्मक मूल्यों और आदतों को बढ़ावा देना :

(i) ईमानदारी, सहयोग, समय पालन और जिम्मेदारी सिखाना।

2. सामूहिक गतिविधियाँ और खेल :

* बच्चों को टीमवर्क, नेतृत्व और सहयोग के अनुभव देना।

3. शिक्षक और अभिभावक सहभागिता :

* शिक्षक और अभिभावक मिलकर बच्चों को सुरक्षित और प्रेरणादायक वातावरण प्रदान करें।

4. सकारात्मक सहपाठी प्रभाव को प्रोत्साहित करना :

* बच्चों को सकारात्मक समूह में शामिल करना और नकारात्मक दबाव से बचाना।

5. संतुलित नियम और अनुशासन :

* बच्चों में जिम्मेदारी, आत्म-नियंत्रण और सामाजिक आदतें विकसित करना।

स्कूल संस्कृति बच्चों के **सामाजिक, नैतिक और शैक्षिक विकास** में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह केवल शिक्षा का माध्यम नहीं है, बल्कि बच्चों को समाजीकरण, समूह भावना, सहयोग और नेतृत्व क्षमता सिखाने का एक प्रभावी माध्यम है। सकारात्मक स्कूल संस्कृति बच्चों को **सुरक्षित, प्रेरक और सहयोगात्मक वातावरण** प्रदान करती है, जबकि नकारात्मक संस्कृति बच्चों के व्यक्तित्व और सामाजिक व्यवहार पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकती है। इसलिए स्कूल प्रशासन, शिक्षक और अभिभावक मिलकर ऐसी संस्कृति को बढ़ावा दें जो बच्चों के समग्र विकास के लिए सहायक हो।

दीर्घ एवं लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1. बाल्यावस्था एवं समाजीकरण की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए। समाजीकरण में सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक भिन्नताओं की भूमिका का वर्णन कीजिए।

उत्तर—समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से बच्चा समाज के नियम, मूल्य, मान्यताएँ एवं व्यवहार सीखता है। यह प्रक्रिया परिवार, समुदाय, विद्यालय और समाज से प्रभावित होती है। सामाजिक स्थिति, आर्थिक संसाधन तथा सांस्कृतिक परम्पराएँ समाजीकरण के तरीकों को अलग-अलग बनाती हैं। उच्च आयु वर्ग के बच्चों को अधिक शैक्षिक अवसर मिलते हैं, जबकि आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के बच्चों को सीमित संसाधनों में समाजीकरण का अनुभव होता है। इसी प्रकार सांस्कृतिक विविधता भी बच्चों के व्यवहार और सोच को आकार देती है।

प्रश्न 2. बाल्यावस्था में परिवार, पालन-पोषण एवं बाल-पालन प्रथाओं की भूमिका की विवेचना कीजिए।

उत्तर—परिवार समाजीकरण की प्रथम संस्था है। माता-पिता एवं अन्य वयस्कों के साथ संबंध बच्चे के व्यक्तित्व विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अनुशासन, प्रेम, सुरक्षा और स्वतंत्रता की मात्रा बाल- पालन प्रथाओं को निर्धारित करती है। सकारात्मक पालन-पोषण से आत्म-विश्वास एवं सामाजिक कौशल विकसित करते हैं, जबकि कठोर या उपेक्षापूर्ण व्यवहार से बच्चों में भय और असुरक्षा उत्पन्न हो सकती है।

प्रश्न 3. समाजीकरण के संदर्भ में विद्यालय की भूमिका का वर्णन कीजिए। सहपाठी प्रभाव, विद्यालय संस्कृति एवं शिक्षक-बाल संबंधों को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—विद्यालय समाजीकरण का महत्वपूर्ण संदर्भ है, जहाँ बच्चे सहपाठियों के साथ संवाद, सहयोग और प्रतिस्पर्धा सीखते हैं। विद्यालय की संस्कृति अनुशासन, समानता और सहभागिता को बढ़ावा देती है। शिक्षकों के साथ सकारात्मक सम्बन्ध बच्चों में सीखने की रुचि, आत्म- सम्मान और सामाजिक मूल्यों का विकास करते हैं।

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1. समाजीकरण का क्या अर्थ है?

उत्तर—समाजीकरण का अर्थ है—सीखने की प्रक्रिया।

प्रश्न 2. समाजीकरण की प्रथम संस्था बताइए।

उत्तर—समाजीकरण की प्रथम संस्था—परिवार

प्रश्न 3. बाल्यावस्था में सबसे अधिक प्रभाव डालने वाला कारक बताइए।

उत्तर—बाल्यावस्था में सबसे अधिक प्रभाव डालने वाला कारक परिवार है।

प्रश्न 4. बाल श्रम किस समस्या से जुड़ा है?
उत्तर—बाल श्रम समस्या गरीबी से जुड़ा है।

प्रश्न 5. बाल शोषण का अर्थ बताइए।
उत्तर—बाल शोषण का अर्थ बच्चों के साथ दुर्व्यवहार से है।

प्रश्न 6. पालन-पोषण का सम्बन्ध किससे है?
उत्तर—पालन-पोषण का सम्बन्ध माता-पिता से है।

प्रश्न 7. बाल-पालन प्रथाएँ किससे प्रभावित होती हैं?
उत्तर—बाल-पालन प्रथाएँ संस्कृति से प्रभावित होती हैं।

प्रश्न 8. विद्यालय किसका प्रमुख माध्यम है?
उत्तर—विद्यालय समाजीकरण का प्रमुख माध्यम है।

प्रश्न 9. सहपाठी प्रभाव किस संदर्भ में होता है?
उत्तर—विद्यालय में।

प्रश्न 10. शिक्षक-बाल सम्बन्ध का उद्देश्य बताइए।
उत्तर—शिक्षक-बाल सम्बन्ध का उद्देश्य व्यक्तित्व विकास से है।

प्रश्न 11. गरीबी बाल्यावस्था को कैसे प्रभावित करती है?
उत्तर—अवसरों को सीमित करके।

प्रश्न 12. अनुशासन समाजीकरण का कौन-सा पक्ष है?
उत्तर—अनुशासन समाजीकरण का नैतिक पक्ष है।

प्रश्न 13. परिवार और बच्चे का सम्बन्ध होता है?
उत्तर—परिवार और बच्चे का भावनात्मक सम्बन्ध होता है।

प्रश्न 14. बाल्यावस्था में सुरक्षा की आवश्यकता क्या है?
उत्तर—बाल्यावस्था में सुरक्षा की आवश्यकता मूलभूत आवश्यकता है।

प्रश्न 15. विद्यालय संस्कृति पर किसका प्रभाव पड़ता है?
उत्तर—विद्यालय संस्कृति पर व्यवहार का प्रभाव पड़ता है।

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. समाजीकरण क्या है?
(अ) जैविक प्रक्रिया
(ब) सामाजिक सीखने की प्रक्रिया
(स) आर्थिक गतिविधि
(द) राजनीतिक प्रक्रिया। ❑ **उत्तर**—(ब)

2. समाजीकरण की पहली संस्था कौन सी है?
(अ) विद्यालय (ब) समुदाय
(स) परिवार (द) राज्य। ❑ **उत्तर**—(स)

3. बाल्यावस्था में सबसे अधिक प्रभाव किसका होता है?
(अ) मीडिया (ब) मित्र
(स) परिवार (द) विद्यालय। ❑ **उत्तर**—(स)

4. बाल श्रम का मुख्य कारण है?
(अ) शिक्षा (ब) गरीबी
(स) खेत (द) तकनीक। ❑ **उत्तर**—(ब)

5. बाल शोषण का तात्पर्य है?
(अ) बच्चों की शिक्षा
(ब) बच्चों के अधिकारों का उल्लंघन
(स) बाल विकास
(द) बाल संरक्षण। ❑ **उत्तर**—(ब)

6. पालन-पोषण किसे सम्बन्धित है?
(अ) विद्यालय से (ब) माता -पिता से
(स) सरकार से (द) समाज से। ❑ **उत्तर**—(अ)

7. सांस्कृतिक भिन्नताएँ किसे प्रभावित करती हैं?
(अ) केवल शिक्षा को (ब) समाजीकरण को
(स) स्वास्थ्य को (द) अर्थव्यवस्था को।
❑ **उत्तर**—(ब)

8. आर्थिक स्थिति का प्रभाव किस पर पड़ता है?
(अ) समाजीकरण के अवसरों पर
(ब) केवल खेल पर
(स) भाषा पर
(द) उम्र पर। ❑ **उत्तर**—(अ)

9. परिवार को समाजीकरण की इकाई क्यों कहा जाता है?
(अ) क्योंकि यह औपचारिक संस्था है
(ब) क्योंकि यह बच्चे का प्रथम सम्पर्क है
(स) क्योंकि यह आर्थिक संस्था है
(द) क्योंकि यह कानूनी संस्था है। ❑ **उत्तर**—(ब)

10. विद्यालय समाजीकरण का कौन-सा स्तर है?
(अ) प्राथमिक (ब) द्वितीयक
(स) तृतीयक (द) अनौपचारिक। ❑ **उत्तर**—(ब)

11. सहपाठी प्रभाव किसे विकसित करता है?
(अ) सामाजिक कौशल
(ब) शारीरिक शक्ति
(स) आर्थिक स्थिति
(द) आयु। ❑ **उत्तर**—(अ)

12. शिक्षक-बाल संबंध का सकारात्मक परिणाम है—
(अ) भय (ब) आत्म-सम्मान
(स) तनाव (द) असुरक्षा। ❑ **उत्तर**—(ब)

13. विद्यालय संस्कृति का सम्बन्ध किससे है?
(अ) पाठ्यक्रम से (ब) मूल्यों एवं अनुशासन से
(स) केवल भवन से (द) समय-सारणी से।
❑ **उत्तर**—(ब)

14. गरीबी का प्रभाव बाल्यावस्था पर कैसे पड़ता है?
(अ) अवसर बढ़ाकर (ब) अवसर सीमित करके
(स) स्वतंत्रता बढ़ाकर (द) शिक्षा बढ़ाकर।
❑ **उत्तर**—(ब)

15. बाल्यावस्था में सुरक्षा की भावना किससे आती है?
(अ) परिवार से (ब) बाजार से
(स) तकनीक से (द) प्रतियोगिता से।
❑ **उत्तर**—(अ)

इकाई-दो

बाल विकास का परिपेक्ष्य
[Perspective of Child Development]

3

भारतीय सन्दर्भ में आत्म
[THE INDIAN CONCEPT OF SELF]

मस्तिष्क (Mind)

भारतीय दर्शन में मस्तिष्क (मन/चित्त/बुद्धि का समन्वित रूप) आत्म-स्व की एक महत्वपूर्ण इकाई माना गया है। यह वह मानसिक सत्ता है जिसके माध्यम से व्यक्ति अनुभव करता है, सोचता है, समझता है और निर्णय लेता है। उपनिषदों, योग दर्शन और सांख्य दर्शन में मस्तिष्क को आत्मा और बाह्य जगत के बीच सेतु के रूप में देखा गया है। मस्तिष्क इन्द्रियों से प्राप्त सूचनाओं को ग्रहण करता है, उनका विश्लेषण करता है तथा चेतना को अनुभव योग्य बनाता है।

विशेषताएँ

(1) मस्तिष्क अनुभवों का केन्द्र होता है, जहाँ इन्द्रियजन्य ज्ञान का संकलन और प्रसंस्करण होता है।

(2) यह विचार, भावना, स्मृति और कल्पना जैसी मानसिक क्रियाओं का आधार है।

(3) भारतीय दर्शन मस्तिष्क को चंचल माना गया है, जिसे साधना और योग द्वारा नियन्त्रित किया जा सकता है।

(4) मस्तिष्क आत्मा के प्रकाश से सक्रिय होता है, स्वयं स्वतंत्र सत्ता नहीं है।

(5) यह व्यक्ति के कर्म, संस्कार और प्रवृत्तियों को प्रतिबिंबित करता है।

(6) मस्तिष्क के शुद्ध होने पर व्यक्ति आत्मज्ञान की ओर अग्रसर होता है।

इस प्रकार भारतीय अवधारणा में मस्तिष्क आत्म-विकास और आत्म-बोध की प्रक्रिया का एक अनिवार्य माध्यम है।

बुद्धि (Intellect)

भारतीय दर्शन में बुद्धि आत्म-स्व की अत्यन्त महत्वपूर्ण शक्ति मानी गयी है। यह मन की वह उच्चतम अवस्था है जो विवेक, तर्क, निर्णय और सत्य-असत्य के भेद को समझने की क्षमता प्रदान करती है। सांख्य दर्शन में बुद्धि को महत्त्व कहा गया है, जो प्रकृति की प्रथम अभिव्यक्ति है। बुद्धि के माध्यम से व्यक्ति ज्ञान अर्जित करता है, अनुभवों का मूल्यांकन करता है तथा सही और गलत का निर्णय लेता है। यह आत्मा के प्रकाश को ग्रहण कर व्यावहारिक जीवन में मार्गदर्शन करती है।

विशेषताएँ

(1) बुद्धि विवेक और तर्कशीलता का आधार होती है।

(2) यह निर्णय लेने और समस्याओं का समाधान करने की क्षमता प्रदान करती है।

(3) बुद्धि मन की चंचलता को नियन्त्रित कर उसे सही दिशा देती है।

(4) यह आत्मा और मन के बीच सेतु का कार्य करती है।

(5) भारतीय दर्शन में शुद्ध बुद्धि को आत्मज्ञान की प्राप्ति का साधन माना गया है।

(6) बुद्धि संस्कारों और अनुभवों से विकसित होती है।

अत: भारतीय अवधारणा में बुद्धि मानव जीवन को सार्थक दिशा देने वाली तथा आत्म-बोध की ओर अग्रसर करने वाली प्रमुख शक्ति है।

चित्त (Memory)

भारतीय दर्शन में स्मृति को चित्त का एक महत्वपूर्ण कार्य माना गया है। चित्त वह मानसिक तत्व है जिसमें व्यक्ति के अनुभव, संस्कार और ज्ञान सुरक्षित रहते हैं। योग दर्शन के अनुसार चित्त में संचित संस्कार ही स्मृति के रूप में पुन: प्रकट होते हैं। स्मृति के माध्यम से व्यक्ति भूतकाल के अनुभवों को याद करता है, उनसे सीख लेता है और वर्तमान व्यवहार को दिशा देता है। इस प्रकार स्मृति आत्म-स्व के निर्माण और व्यक्तित्व के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

विशेषताएँ

(1) स्मृति पूर्व अनुभवों और ज्ञान को सुरक्षित रखने की क्षमता है।

(2) यह चित्त में संचित संस्कारों पर आधारित होती है।

(3) स्मृति व्यक्ति के व्यवहार और निर्णयों को प्रभावित करती है।

(4) यह सीखने की प्रक्रिया का आधार है।

(5) योग एवं ध्यान द्वारा स्मृति को शुद्ध और सुदृढ़ किया जा सकता है।

(6) भारतीय दर्शन में अशुद्ध स्मृति को बंधन और शुद्ध स्मृति को आत्मज्ञान का साधन माना गया है।

इस प्रकार स्मृति भारतीय आत्म-स्व की अवधारणा में अतीत और वर्तमान को जोड़ने वाली एक सशक्त मानसिक प्रक्रिया है।

भारतीय आत्म-स्व की अवधारणा में पंच-कोशीय विकास

(Panch-Koshiya Vikas)

भारतीय दर्शन में आत्म-स्व की अवधारणा को पंच-कोश सिद्धांत के माध्यम से स्पष्ट किया गया है। तैत्तिरीय उपनिषद् के अनुसार आत्म पाँच आवरणों या कोशों से ढकी हुई है, जिन्हें पंच-कोश कहा जाता है। इन कोशों के क्रमिक विकास को ही पंच-कोशीय विकास कहा जाता है। यह विकास व्यक्ति को बाह्य भौतिक स्तर से आंतरिक आध्यात्मिक स्तर की ओर ले जाता है। पंच-कोशीय विकास का उद्देश्य आत्म-बोध और पूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण करना है।

पंच-कोशीय विकास के पाँच स्तर

1. अन्नमय कोश—यह शरीर का स्थूल स्तर है, जो अन्न, जल और भौतिक पोषण से निर्मित होता है। शारीरिक स्वास्थ्य, वृद्धि और शक्ति इसी कोश से सम्बन्धित हैं। संतुलित आहार और स्वस्थ जीवनशैली से इसका विकास होता है।

2. प्राणमय कोश—यह जीवन-ऊर्जा (प्राण) का कोश है। श्वांस- प्रश्वांस, रक्त संचार और जैविक क्रियाएँ इसी से संचालित होती है। प्राणायाम और योगाभ्यास द्वारा इसका संतुलन एवं विकास होता है।

3. मनोमय कोष—यह मन, भावना और विचारों का स्तर है। सुख-दु:ख, इच्छा और संकल्प इसी कोश से जुड़े होते हैं। सकारात्मक सोच और भावनात्मक नियंत्रण से इसका विकास सम्भव है।

4. विज्ञानमय कोश—श्ह विवेक बुद्धि और निर्णय की क्षमता का कोश है। सही-गलत का ज्ञान, नैतिकता और आत्म-अनुशासन इसी स्तर पर विकसित होता है।

5. आनंदमय कोश—यह सबसे सूक्ष्म और उच्चतम कोश है, जहाँ शुद्ध आनंद और आत्मिक शांति का अनुभव होता है। ध्यान और आत्म- साधना से इसकी प्राप्ति होती है।

इस प्रकार पंच-कोशीय विकास व्यक्ति को सम्पूर्ण, संतुलित और आत्म-साक्षात्कार की ओर अग्रसर करता है।

भारतीय आत्म-स्व की अवधारणा : शैक्षिक निहितार्थ

(Educational Implication)

भारतीय आत्म-स्व की अवधारणा शिक्षा को केवल ज्ञान अर्जन की प्रक्रिया नहीं, बल्कि सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास का माध्यम मानती है। इस दृष्टिकोण में शिक्षा का उद्देश्य बालक के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, नैतिक और आध्यात्मिक विकास को संतुलित रूप से विकसित करना है। आत्म-स्व की अवधारणा के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में अन्त-निर्हित संभावनाएँ होती हैं, जिन्हें शिक्षा के माध्यम से जागृत किया जाना चाहिए। शिक्षा आत्म-बोध, आत्म-नियन्त्रण और जीवन मूल्यों के विकास का साधन बनती है।

1. समग्र विकास पर बल—भारतीय दृष्टिकोण शिक्षा में पंच-कोशीय विकास पर बल देता है, जिससे शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का संतुलित विकास हो सके।

2. मूल्य एवं नैतिक शिक्षा—आत्म-स्व की अवधारणा में सत्य, अहिंसा, करुणा, अनुशासन और आत्म-संयम जैसे मूल्यों को महत्वपूर्ण मानती है।

3. आत्म-अनुशासन और स्वाध्याय—शिक्षा में आत्म-अनुशासन, ध्यान और स्वाध्याय को स्थान दिया जाना चाहिए ताकि विद्यार्थी स्वयं को समझ सके।

4. अनुभवात्मक एवं जीवनोपयोगी शिक्षा—शिक्षा को अनुभव आधारित बनाया जाए जिससे विद्यार्थी आत्म-चिंतन और आत्म-अनुभव के माध्यम से सीख सके।

5. शिक्षक की भूमिका—शिक्षक को केवल ज्ञानदाता नहीं, बल्कि मार्गदर्शक और प्रेरक माना गया है, जो विद्यार्थियों को आत्म-विकास की दिशा दिखाता है।

6. आध्यात्मिक चेतना का विकास—शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थियों में आंतरिक शांति, संतुलन और जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करना है।

इस प्रकार भारतीय आत्म-स्व की अवधारणा शिक्षा को मानव निर्माण की एक पवित्र प्रक्रिया के रूप में स्थापित करती है।

दीर्घ एवं लघुउत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1. स्व की भारतीय संकल्पना को स्पष्ट कीजिए। मन, बुद्धि एवं चित्त की भूमिका का वर्णन कीजिए।

उत्तर—भारतीय दर्शन में 'स्व' को केवल शारीरिक या मानसिक इकाई नहीं माना गया है, बल्कि यह चेतना और आत्मबोध से जुड़ा हुआ है। मन इन्द्रियों से प्राप्त अनुभवों को ग्रहण करता है और इच्छाओं का निर्माण करता है। बुद्धि विवेक, निर्णय एवं तर्क का केन्द्र है, जो सही- गलत का भेद करती है। चित्त स्मृति एवं संस्कारों का भण्डार है, जिसमें अनुभव संचित रहते हैं। इन तीनों के समन्वय से व्यक्ति का व्यक्तित्व और आचरण विकसित होता है।

प्रश्न 2. पंचकोशीय विकास की अवधारणा का वर्णन कीजिए।

उत्तर—पंचकोशीय विकास भारतीय दर्शन की महत्वपूर्ण अवध रणा है, जिसके अनुसार मानव व्यक्तित्व पाँच कोशों से मिलकर बना है– अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश एवं आनंदमय कोश। अन्नमय कोश शारीरिक विकास से, प्राणमय कोश जीवन-ऊर्जा से, मनोमय कोश भावनाओं एवं विचारों से, विज्ञानमय कोश ज्ञान एवं विवेक से तथा आनन्दमय कोश आत्मिक शांति एवं आनन्द से सम्बन्धित है। संतुलित विकास के लिए इन सभी कोशों का समन्वित विकास आवश्यक है।

प्रश्न 3. स्व की भारतीय संकल्पना एवं पंचकोशीय विकास के शैक्षिक निहितार्थों की विवेचना कीजिए।

उत्तर—शिक्षा का उद्देश्य केवल बौद्धिक विकास नहीं, बल्कि सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास है। भारतीय संकल्पना के अनुसार शिक्षा में नैतिकता, आत्म-अनुशासन, ध्यान, योग और मूल्य-शिक्षा को महत्व दिया जाना चाहिए। पंचकोशीय दृष्टिकोष शिक्षा को शारीरिक,

4
विकास
[DEVELOPMENT]

शारीरिक विकास
(Physical Development)

किसी बालक की शिक्षा का स्वरूप निश्चित करने के लिए यह आवश्यक है कि उस अवस्था की विशेषताओं का अध्ययन किया जाये। तभी ठीक ढंग से बालक की शिक्षा का स्वरूप निधरित किया जा सकता है। इसी प्रकार शिक्षक को इस बात की जानकारी होनी चाहिए कि बालक का शारीरिक विकास किस प्रकार होता है? तभी वे जान सकेंगे कि बालकों का शारीरिक आर मानसिक विकास साथ-साथ चल रहा है या नहीं।

बाल्यावस्था में शारीरिक विकास

बाल्यावस्था में शारीरिक विकास इस प्रकार होता है—

(1) भार—इस अवस्था में बालक के भार में पर्याप्त वृद्धि होती है। 12 वर्ष के अन्त तक यह भार 80 पौण्ड तक पहुँच जाता है। 10 वर्ष की आयु तक बालकों का भार बालिकाओं से अधिक होता है। परन्तु इसके पश्चात् बालिकाओं का भार बढ़ जाता है।

(2) ऊँचाई—इस अवस्था में 6 से 12 वर्ष तक बालक की ऊँचाई कम बढ़ती है। यह ऊँचाई केवल 2 या 3 इंच बढ़ती है।

(3) मस्तिष्क—इस अवस्था में बालक के भार में परिवर्तन होता रहता है। जब बालक 9 का होता है तो उसके मस्तिष्क का भार शरीर के कुल भार का 90% होता है।

(4) हड्डियाँ—इस अवस्था में हड्डियों की संख्या बढ़ जाती है। उनका अस्थीकरण भी प्रारम्भ हो जाता है। इस अवस्था में हड्डियों की संख्या 350 हो जाती है।

(5) दाँत—लगभग 6 वर्ष की आयु में बालक के दूध के दाँत गिरने लगते हैं। इस समय उसके स्थायी दाँत निकलने प्रारम्भ हो जाते हैं । 12 वर्ष तक की आयु में बालक के सभी स्थायी दाँत निकल आते हैं। इनकी संख्या लगभग 32 होती है।

(6) अन्य अवयव—इस अवस्था में माँसपेशियाँ विकसित होना प्रारम्भ हो जाती हैं। इस समय हृदय की धड़कन की गति धीमी हो जाती है। 12 वर्ष में धड़कन 1 मिनट में 85 बार होती है। 12 वर्ष की आयु में बालक तथा बालिकाओं के गुप्तांगों की विकास तीव्र गति से होता है।

किशोरावस्था में शारीरिक विकास

किशोरावस्था में शारीरिक विकास निम्न प्रकार होता है—

(1) भार—इस अवस्था में बालकों का भार बालिकाओं से अधिक बढ़ता है । बालिकाओं का भार बालकों से 25 पौण्ड कम होता है।

(2) ऊँचाई—किशोरावस्था में बालक तथा बालिकाओं की ऊँचाई तेजी से बढ़ती है। बालिकाएँ अपनी सम्पूर्ण ऊँचाई 16 वर्ष में प्राप्त कर लेती हैं। बालक 18 वर्ष और उसके बाद भी बढ़ते हैं।

(3) मस्तिष्क—इस अवस्था में मस्तिष्क का भार 1200 तथा 1400 ग्राम के मध्य रहता है । इस अवस्था में मस्तिष्क का विकास जारी रहता है। 16 वर्ष तक बालक के सिर का पूर्ण विकास हो जाता है।

(4) हड्डियाँ—इस अवस्था में हड्डियों का दृढ़ीकरण पूर्ण हो जाता है । इसी कारण हड्डियाँ पूर्ण रूप से मजबूत हो जाती हैं। कुछ हड्डियाँ एक-दूसरे से जुड़ भी जाती हैं।

(5) दाँत—इस अवस्था में बालक तथा बालिकाओं के सभी दाँत निकल आते हैं।

(6) अन्य अवयव—किशोरावस्था में माँसपेशियों का विकास तीव्र गति से होता है। हृदय की धड़कन में निरन्तर कमी आती है। किशोरावस्था के अन्त में हृदय की धड़कन 1 मिनट में 72 बार होती है। बालकों के सीने और कन्धे चौड़े हो जाते हैं। बालिकाओं के वक्ष-स्थल तथा कूल्हे चौड़े हो जाते हैं। इस अवस्था में बालक तथा बालिकाओं के गुप्तांग पूर्ण विकसित हो जाते हैं।

शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले मुख्य कारक निम्नलिखित हैं—

(1) वंशानुक्रम (Heredity)—माता-पिता के स्वास्थ्य और शारीरिक रचना का प्रभाव उनके बच्चों पर भी पड़ता है। स्वस्थ माता-पिता की संतान का ही शारीरिक विकास ठीक प्रकार से होता है। रोगी और निर्बल माता-पिता की संतान रोगी और निर्बल हो सकती है।

(2) पर्यावरण (Environment)—बालक के शारीरिक विकास के लिए शुद्ध वायु, पर्याप्त धूप और स्वच्छता आवश्यक है। पर्याप्त धूप का सेवन करने वाले बालकों को सर्दी, जुकाम, खाँसी, आँखों की कमजोरी आदि रोग कभी नहीं हो पाते। स्वच्छता, सुन्दर स्वास्थ्य का मुख्य आधार है। यदि बालक का शरीर पहनने के वस्त्र, रहने का स्थान, भोजन आदि स्वच्छ होते हैं, तो उसके शरीर का विकास तीव्र गति से होता है।

क्रो एवं **क्रो** के अनुसार, "बालक के स्वाभाविक विकास में वातावरण के तत्व सहायक होते हैं ।

(3) पौष्टिक भोजन (Balanced Diet)—बालक के शारीरिक विकास के लिए पौष्टिक भोजन अति आवश्यक है।

सोरेनसन के अनुसार, ''पौष्टिक भोजन, थकान का प्रबल शत्रु है और शारीरिक विकास का परम मित्र है।''

(4) नियमित दिनचर्या (Daily Routine)—नियमित दिनचर्या, उत्तम स्वास्थ्य की आधारशिला है। बालक के खाने-पीने, पढ़ने-लिखने, खेलने-कूदने, सोने आदि का समय निश्चित होना चाहिए।

(5) निद्रा व विश्राम (Sleep and Rest)—शरीर के स्वस्थ विकास के लिए निद्रा और विश्राम अति आवश्यक है क्योंकि थकान बालक के विकास में बाधक होती है । बाल्यावस्था और किशोरावस्था में क्रमशः 10 घण्टे और 8 घण्टे ही निद्रा पर्याप्त होती है।

(6) प्रेम (Love)—बालक के उचित शारीरिक विकास का आधार प्रेम है। यदि बालक को उसके माता-पिता, शिक्षक का प्रेम नहीं मिलता है, तो वह दु:खी रहता है और उसे अनेक कष्टों का सामना करना पड़ता है।

(7) सुरक्षा (Safety)—बालक के शारीरिक विकास के लिए उसका भय मुक्त होना आवश्यक है। सुरक्षा की भावना के अभाव में वह भय का अनुभव करने लगता है।

(8) खेल व व्यायाम (Play and Exercise)—शारीरिक विकास के लिए खेल व व्यायाम अति आवश्यक है। बालकों एवं किशोरों के लिए खुली हवा में खेल एवं व्यायाम की व्यवस्था होना आवश्यक है।

(9) अन्य कारक (Other Factors)—शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले अन्य कारक हैं—(i) खराब जलवायु, (ii) दोषपूर्ण सामाजिक परम्पराएँ; जैसे—बाल-विवाह, (iii) गर्भिणी माता का स्वास्थ्य,(iv) परिवार का रहन-सहन, (v) परिवार की आर्थिक स्थिति, (vi) रोग या दुर्घटना के कारण शरीर में होने वाली विकृति अथवा अयोग्यता।

नैतिक विकास
(Moral Development)

समाज द्वारा मान्य व्यवहारों को व्यक्ति सीखता है वही समाजीकरण कहलाता है। इस प्रक्रिया में ही वह उचित तथा अनुचित के बारे में जानता है। वह जो उचित होता है उसे अपनाता है। यही उचित नैतिक गुण कहलाते हैं। इन नैतिक मूल्यों के आधार पर बच्चा सही-गलत अच्छे-बुरे के अन्तर को समझता है। नैतिक विकास ही बच्चे के चरित्र का निर्माण करते हैं। चरित्र निर्माण में परिवार के मूल्य सहायक होते हैं। मूल्य वे अभिवृत्तियाँ हैं जो प्रत्येक परिवार तथा समाज में अलग-अलग होते हैं। ये मूल्य सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक तथा सैद्धान्तिक होते हैं। इनमें से सामाजिक मूल्य (आज्ञा मानना) अच्छे बुरे का अंत, ईमानदारी, दया, प्रेम, त्याग, आत्म-नियंत्रण आदि) बालक का चरित्र बनाते हैं। जब बच्चा इन सामाजिक मूल्य व गुणों को अपने जीवन में अपना लेते हैं तो उसका चरित्र निर्माण तथा चारित्रिक विकास होता है। यही चरित्र निर्माण नैतिक विकास कहलाता है। बच्चा जब दूसरे बच्चों के साथ रहता है खेलता है तो अच्छे बुरे में अन्तर समझता है उचित-अनुचित जानता है यही नैतिक विकास है। जब बालक इन नैतिक मूल्यों को समझने लगता है तो गलत वस्तुओं गलत सिद्धान्तों से नफरत करने लगता है तथा उचित के प्रति जागरूक तथा आस्था रखने वाला हो जाता है। इन नैतिक मूल्यों को अपनाकर बालक समाज का आवश्यक उपयोगी अंग बन जाता है। इसके विपरीत नैतिक सामाजिक मूल्यों की अपेक्षा कर समाज के लिए सिरदर्द तथा निरर्थक हो जाता है।

नैतिक व्यवहार मूल्य बच्चों को उचित व्यवहार की प्रेरणा देता है। नैतिक मूल्यों का पालन न करने वाले को समाज ग्रहण नहीं करता इसलिए बालक समाज के साथ नैतिक मूल्यों के अनुरूप व्यवहार करता है। उचित नैतिक मूल्य वाले बच्चों को मानसिक मूल्य एक से होते हैं उन्हें मानसिक तनाव कम होता है। नैतिक विकास एक सी गति से होता है पर वह बालक जिनके परिवार तथा जहाँ वह रह रहे हैं। उस समाज के नैतिक मूल्य अलग-अलग होते हैं तो उनका मानसिक तनाव बढ़ जाता है।

बच्चा सबसे पहले नैतिकता अपने परिवार से भूल-सुधार विधि द्वारा सीखता है। यह भूल-सुधार विधि प्रायः बाल्यावस्था तक चलती है क्योंकि इस उम्र तक बच्चे को जो सिखाया जाता है उसे सीमित ज्ञान के कारण भूल जाता है उसे फिर सिखाया जाता है। इसके बाद जब पूर्वाबाल्यावस्था का प्रारम्भ होता है। तो बालक नैतिक मूल्यों को पुरस्कार पाने की इच्छा तथा दण्ड के डर से सीखता है क्योंकि कार्य करने पर बच्चे की परिवार में, स्कूल में अध्यापक द्वारा प्रशंसा तथा पुरस्कार मिलते हैं। जबकि गलत काम करने पर दण्ड मिलता है। दण्ड के डर से बच्चा गलत नैतिक मूल्य नहीं सीखता है जबकि पुरस्कार के लालच से वह समाज द्वारा मान्य नैतिक मूल्यों को सीख लेता है। कुछ नैतिक मूल्य ऐसे होते हैं जिन्हें बच्चा अपने परिवार के रीति-रिवाजों तथा संस्कृति द्वारा सीखता है। बड़ों का नैतिक-अनैतिक व्यवहार उनकी आत्मा द्वारा नियमित होता है जबकि बच्चों का नैतिक-अनैतिक व्यवहार उनके आस-पास के सामाजिक प्रतिनियमों तथा बंधनों से प्रभावित होता है।

समाज में कौन-कौन से व्यवहार मान्य हैं; यह बच्चे को प्रत्यक्ष रूप से समझाया जा सकता है। वे बच्चे जिनके परिवार तथा स्कूल के नैतिक मूल्य एक से होते हैं उनमें नैतिकता का विकास शीघ्र तथा स्वयं प्रशिक्षण विधि द्वारा आसानी से हो जाता है। किन्तु घर की भौतिकता जिसके लिए बच्चे को पुरस्कार मिल रहा हो वह स्कूल के समाज में अमान्य हो तो एसे बालकों में तनाव उत्पन्न होने लगता है कि एक ही व्यवहार के लिए उसे एक जगह इनाम तथा दूसरी जगह दण्ड क्यों मिल रहा है। जैसे-जैसे उम्र बढ़ने के साथ-साथ मानसिक विकास होता है नैतिक मूल्यों का विस्तृत अर्थ उसे स्पष्ट हो जाता है। प्रारम्भ में नैतिक मूल्यों का जो प्रत्यक्ष अर्थ होता है वह उसे ही समझता है। किन्तु बौद्धिक विकास के साथ- साथ वे प्रत्येक नैतिक मूल्य के साथ जुड़े अप्रत्यक्ष व्यवहार तथा अर्थ को भी समझने लगता है। परिवार, समाज तथा स्कूल के नैतिक मूल्य एक से होने पर बालक को उन्हें सीखने में कोई परेशानी नहीं होती है। वह आसानी से नैतिक गुण सीख लेता है पर नैतिक मूल्य अलग-अलग होने से उसे तनाव होता है तथा नैतिक विकास मंद गति से होता है।

नैतिक विकास को प्रभावित करने वाला तत्व

(1) बुद्धि—बालक के नैतिक विकास को बुद्धि सबसे अधिक प्रभावित करती है। क्योंकि जब तक बालक में बौद्धिक विकास नहीं होता वह नैतिक-अनैतिक के भेद को नहीं समझता। तीव्र बुद्धि बालक अच्छे-बुरे का, सही-गलत का भेद, मंद-बुद्धि बच्चों की अपेक्षा जल्दी सीख लेते हैं इसलिए उनका नैतिक विकास भी मन्दबुद्धि बच्चों की अपेक्षा तीव्र होता है। तीव्र बुद्धि बालकों में यदि गलत आदत पड़ भी जाती है तो वह सामान्यत: समझाने-बुझाने से छोड़ देते हैं। तीव्र-बुद्धि बालक समाज मान्य व्यवहार शीघ्र अपनाते हैं इसलिए उनमें सच्चाई, ईमानदारी, आज्ञापालन, मंदबुद्धि बच्चों की अपेक्षा अधिक होता है।

(2) आयु—आयु बढ़ने के साथ ही बौद्धिक विकास भी होता है इसलिए नैतिक विकास को आयु भी प्रभावित करती है। उम्र बढ़ने पर वह उचित-अनुचित, नैतिक-अनैतिक में भेद पाते हैं। बड़ी उम्र के बच्चे कम उम्र बच्चों की अपेक्षा अधिक ईमानदार, सहनशीलता, सच बोलने वाले होते हैं। किन्तु प्राय: सही निर्देशन न होने पर किशोरावस्था में समस्या उत्पन्न होती है जब बच्चे यौन इच्छाओं के कारण यौन सम्बन्धों अनैतिकता की ओर अग्रसर हो जाते हैं।

(3) लिंग—लड़के तथा लड़कियों की नैतिकता के विकास में अन्तर पाया जाता है। इसका एक कारण नलिका विहीन ग्रन्थियों से निकलने वाला स्राव भी होता है। लड़कियों की अपेक्षा लड़कों में गलत काम की प्रवृत्ति अधिक होती है।

(4) परिवार—नैतिकता में समाज द्वारा मान्य व्यवहार आते हैं। बालक का पहला समाज परिवार होता है इसलिए समाज में कौन-से व्यवहार मान्य होंगे यह सबसे पहले बच्चा परिवार से ही सीखता है। परिवार का वातावरण तथा अभिभावक बच्चे को नैतिकता किस प्रकार सिखाते पढ़ाते हैं; इसका प्रभाव भी पड़ता है। वे परिवार जहाँ का वातावरण प्रेममय व शांत होता है, सदस्यों में आपसी सामंजस्य होता है; वहाँ के बच्चों का नैतिक विकास सही दिशा में तीव्र गति से होता है। किन्तु जिन परिवारों में लड़ाई-झगड़े होते रहते हैं, माँ-बाप में नहीं बनती; शराब पीना, जुआ खेलना जैसी गलत आदतें होती हैं। वे बच्चों में आ जाती हैं। परिवार के बच्चे चोरी करना, झूठ बोलना, क्रोध करना तथा अन्य दुराचार जल्दी सीख जाते हैं।

(5) पाठशाला—घर के बाद बच्चे का दूसरा समाज पाठशाला होती है। शाला में पढ़ने वाले बच्चे, अध्यापक तथा शाला का वातावरण बालक के नैतिक विकास को प्रभावित करते हैं। शाला का अनुशासन बालक के नैतिक विकास को प्रभावित करता है।

(6) धर्म—बच्चों को जितना धार्मिक वातावरण मिलता है उतना ही उसमें सद्गुणों का विकास होता है अर्थात् वह चरित्रवान बनेगा। उचित नैतिक विकास के लिए परिवार का धार्मिक वातावरण सहायक होता है क्योंकि धर्म सदाचार-दुराचार में अन्तर स्पष्ट करता है।

भाषा विकास
(Language Development)

भाषा विशेष रूप से एक मानव व्यवहार है। यह मानव क्रियाओं में एक मुख्य भूमिका निभाती है। बच्चों में भाषा का विकास किस प्रकार होता है। इसे स्पष्ट करने के लिए अनेक मनोवैज्ञानिकों ने प्रयास किया है। इस प्रयास के फलस्वरूप भाषा विकास के तीन सिद्धान्त सामने आते हैं—

(1) भाषा का विकास स्वत: होता है—पहला सिद्धान्त **'कोमोस्की'** द्वारा दिया गया है। उसके अनुसार बच्चे में आन्तरिक योग्यता होती है जिससे वह स्वत: भाषा सीख लेता है। अर्थात् भाषा सीखना वंशानुक्रम से प्राप्त होता है।

(2) भाषा वातावरण में सीखी जाती है—इस सिद्धान्त को स्किनर ने दिया है उनके अनुसार एक निश्चित वातावरण में बालक भाषा को साधन अनुकूलन द्वारा सीखता है। जब बच्चे की भाषा सम्बन्धी कोई प्रतिक्रिया बार-बार सबलीकृत होती है तो उस सबलीकरण (Reinforcement) के कारण उस प्रतिक्रिया को देना सीख जाता है। उदाहरणार्थ जब बच्चा किसी शब्द का सही उच्चारण करता है तो माता-पिता बार-बार 'शाबास' कहते हैं और अन्य प्रकार से उसकी प्रशंसा करते हैं। यह प्रशंसा सबलीकरण का कार्य करती है और बच्चा शब्द का सही उच्चारण सीख जाता है।

(3) भाषा अनुकरण द्वारा सीखी जाती है—भाषा को बच्चा अनुकरण के माध्यम से सीखता है। जब वे दूसरों को बोलता देखते हैं तो उसी तरह की ध्वनि निकालने का प्रयत्न करते हैं, धीरे-धीरे वे सही ध्वनि निकालने लगते हैं यही कारण है कि माता-पिता तथा पड़ोस के व्यक्ति जो भाषा बोलते हैं बच्चे भी वही भाषा बोलना सीख जाते हैं।

बाल्यकाल में भाषा का विकास

चार वर्ष की आयु में बच्चों का शब्दकोश लगभग 1550 शब्दों का हो जाता है। वह छोटे-छोटे दिन-प्रतिदिन की बोलचाल के वाक्यों को बोलने लगता है। पाँच वर्ष की आयु में उसे लगभग 2070 शब्दों का ज्ञान हो जाता है। वह स्पष्ट वाक्यों को बोलने लगता है। व्याकरण की दृष्टि से सही वाक्यों का उच्चारण करना उसे आ जाता है। छ: वर्ष की आयु में उसे लगभग 2560 शब्दों का ज्ञान हो जाता है। सही व लम्बे वाक्य भी वह बोलने लगता है। **टर्मन** और **स्मिथ** आदि मनोवैज्ञानिकों ने बच्चों के शब्द ज्ञान व उच्चारण की क्षमता पर अनुसंधान करके निम्नलिखित आँकड़े प्रस्तुत किए हैं—

आयु	शब्द भण्डार
10 माह	1
1 वर्ष	3
2 वर्ष 6 माह	272
3 वर्ष	896
4 वर्ष	1540
6 वर्ष	2500
8 वर्ष	3600
10 वर्ष	5400

भाषा विकास में अवरोध

भाषा विकास में कई अवरोध आते हैं, इस अवरोध के कई कारण हैं—

1. ध्वनिदोष—ध्वनि में दोष होने के कारण भाषा का समुचित विकास नहीं हो पाता है। कभी-कभी बच्चे नाक से बोलते हैं जिसके

कारण उच्चारण दोषपूर्ण हो जाता है। कभी-कभी बच्चा सभी ध्वनियाँ नहीं निकाल पाता है। जिसके कारण उसके शब्द पूरे उच्चारित नहीं होते हैं। इससे भाषा में दोष आता है।

2. लयदोष—इस दोष में बच्चे दो अथवा दो से अधिक अक्षरों को एक ही प्रकार की ध्वनि से उच्चारित करते हैं; जैसे—ट और ब को 'त' और 'व' कहना 'ड' को 'र' कहना। इसका कारण तालू, दाँत और वायु नली में किसी प्रकार दोष होना है। जिसके कारण बच्चे शब्दों का सही उच्चारण नहीं कर पाते हैं।

3. बोलने के अंगों में दोष—बच्चों में बोलने से सम्बन्धित कुछ दोष इस प्रकार होते हैं; जैसे—हकलाना, तुतलाना आदि। ये दोष बोलने के अंगों यथा जीभ, गला, दाँतों में दोष होने के कारण आते हैं।

4. सुनने में दोष—यदि बच्चा ठीक से सुन नहीं पाता है तो वह शब्द ज्ञान और उन शब्दों को उच्चारित करने के ज्ञान से वंचित रह जाता है। इस प्रकार उसके भाषा के विकास में समस्या या बाधा आती है।

प्रश्न—भाषा विकास को प्रभावित करने वाले तत्व बताइए।

उत्तर— भाषा विकास को प्रभावित करने वाले तत्त्व

निम्नलिखित तत्त्व बालक के भाषा विकास को प्रभावित करते हैं—

(1) शारीरिक स्वास्थ्य—जो शिशु प्रारम्भ से ही शारीरिक रूप से स्वस्थ रहता है, उसका भाषा का विकास सरलता से तथा बिना किसी समस्या के होता है। यदि शिशु आरम्भ से ही अस्वस्थ रहता है अथवा उसे कोई रोग आ घेरता है तो उसकी बोलने की प्रक्रिया रुक जाती है। इसके कुछ कारण इस प्रकार हैं—

(क) शिशु का अपने साथियों से सम्पर्क समाप्त हो जाता है।

(ख) रोग के कारण उसे बोलने की प्रेरणा नहीं मिलती।

(ग) शिशु की सभी आवश्यकताएँ बिना बोले पूर्ण कर दी जाती हैं।

(2) बौद्धिक स्तर—अनेक मनोवैज्ञानिकों जिनमें **टरमन, शर्ले, गैरीसन** आदि प्रमुख हैं, का विश्वास है कि बौद्धिक स्तर तथा शिशु के बोलने में घनिष्ठ सम्बन्ध है। बालक की बोली सुनकर उसके बौद्धिक स्तर का अनुमान लगाया जा सकता है। **स्पाईकर** तथा **इरविन** ने निष्कर्ष निकाला कि बुद्धि-लब्धि तथा शिशु की भाषा सम्बन्धी योग्यता में घनिष्ठ सम्बन्ध है।

परन्तु इसके विपरीत **जरसील्ड** ने निष्कर्ष निकाला कि जो शिशु जल्दी बोलना सीखता है, वह साधारण बुद्धि का बालक होता है। **सिरकिन** तथा **लायन्स** ने निष्कर्ष निकाला कि मन्द बुद्धि बालक में एक-तिहाई बालक ठीक समय पर बोलना सीख जाते हैं।

परन्तु **टरमन, फिशर** और **यंग** आदि ने निष्कर्ष निकाला कि प्रखर बुद्धि के बालक अधिक शब्द बोलना जानते हैं। उनका उच्चारण भी शुद्ध होता है।

(3) पारिवारिक सम्बन्ध—**मैकार्थी** तथा **थाम्पसन** ने अनाथालय के बच्चों पर कई प्रयोग किये। उन्होंने देखा कि अनाथ बालक अधिक रोते और कम बबलाते हैं। उनके मुख से निकलने वाली ध्वनियाँ कम होती हैं। अनाथ बालक बोलना देर से सीखते हैं और आयु भर पीछे ही रहते हैं। अत: कहा जा सकता है कि भाषा विकास और परिवार का घनिष्ठ सम्बन्ध है। जो शिशु अपने माता-पिता के साथ रहते हैं, वे शुद्ध बोलना जल्दी सीख जाते हैं।

(4) सामाजिक और आर्थिक स्तर—ऐसा देखा गया है कि जिन बालकों का सामाजिक और आर्थिक स्तर निम्न होता है, वे देर से बोलना सीखते हैं। ऐसे शिशुओं को बोलने के अवसर कम मिलते हैं। शिशु के रोने की क्रिया सभी शिशुओं में समान होती है। उच्च सामाजिक स्तर के शिशु तथा निम्न सामाजिक स्तर के शिशु समान रूप से रोते हैं। **गैसिल, जरसील्ड** आदि मनोवैज्ञानिकों ने उच्च सामाजिक स्तर के बालकों के सम्बन्ध में निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले—

(क) उच्च वर्ग के शिशु जल्दी बोलना सीख जाते हैं।

(ब) उच्च वर्ग के शिशु अधिक बोलते हैं।

(ग) उच्च वर्ग के शिशु शुद्ध उच्चारण कर सकते हैं।

(5) लिंग भेद—शिशु के जन्म से एक वर्ष तक भाषा विकास की दृष्टि से कोई अन्तर नहीं होता है। परन्तु द्वितीय वर्ष के आरम्भ से भाषा विकास में अन्तर आना आरम्भ हो जाता है। इस सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिकों के कुछ निष्कर्ष इस प्रकार हैं—

(क) बालकों की अपेक्षा बालिकाएँ बोलना जल्दी आरम्भ कर देती हैं।

(ख) बालक छोटे-छोटे वाक्य बोलते हैं, परन्तु बालिकाएँ लम्बे-लम्बे वाक्य बोलती हैं।

(ग) बालिकाओं की बोध शब्दावली बालकों की बोध शब्दावली की अपेक्षा अधिक विस्तृत होती है।

(घ) बालकों की अपेक्षा बालिकाओं का शब्द उच्चारण अधिक शुद्ध होता है।

उपर्युक्त लिंग भेद का क्या कारण हो सकता है ? **मैकार्थी** के अनुसार इसका कारण यह है कि प्रारम्भ से ही पुत्रियाँ माता के साथ और पुत्र पिता के साथ एकरूपता स्थापित करते हैं। माता के घर पर रहने के कारण पुत्रियाँ माता से सम्पर्क रखती हैं। वे घर के काम में उसका हाथ बँटाती हैं। पिता अधिकतर घर के बाहर रहते हैं। बालक भी अधिकतर घर के बाहर रहते हैं। सम्पर्क की कमी के कारण बालक भाषा की दृष्टि से बालिकाओं से पिछड़ जाते हैं। सम्पर्क के अभाव के कारण बालक अपने को असुरक्षित समझते हैं। अत: वे भाषा विकास की दृष्टि से पिछड़ जाते हैं। बालकों में भाषा सम्बन्धी दोष भी अधिक पाये जाते हैं।

(6) दो भाषाएँ सीखना—जिन परिवारों में बालकों को दो भाषाएँ सीखनी पड़ती हैं वहाँ उनकी भाषा का विकास उचित ढंग से नहीं होता है। उदाहरण के लिए, शिक्षित परिवारों में बालकों को—हिन्दी तथा अंग्रेजी दोनों भाषाएँ सिखायी जाती हैं। ऐसी स्थिति में यदि अंग्रेजी बोलने पर अधिक जोर दिया जाता है तो बालक हिन्दी अशुद्ध बोलते हैं। यदि परिवार में खिचड़ी भाषा (हिन्दी + अंग्रेजी) का प्रयोग किया जाता है तो बालक न तो हिन्दी सीख पाते हैं और न अंग्रेजी।

शिशु पर दो भाषा सीखने का बोझ लाद देने से उसके भाषा-विकास में बाधा पड़ती है। **हरलॉक** ने एक अध्ययन में यह निष्कर्ष निकाला कि यदि बालक को दो भाषाएँ सिखायी जाती हैं तो उसके भाषा-विकास तथा चिन्तन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

विकास के विभिन्न क्षेत्र (शारीरिक, संज्ञानात्मक, सामाजिक-भावनात्मक, नैतिक एवं भाषा विकास) में परिवार की भूमिका

बाल विकास एक सतत और बहुआयामी प्रक्रिया है, जिसमें बालक के शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक, सामाजिक, नैतिक तथा भाषायी पक्षों का क्रमिक विकास होता है। इस सम्पूर्ण विकास प्रक्रिया में परिवार बालक की प्रथम और सबसे प्रभावशाली सामाजिक संस्था है। परिवार ही वह वातावरण प्रदान करता है जहाँ बालक जन्म से लेकर किशोरावस्था तक सीखता, अनुभव करता और अपने व्यक्तित्व का निर्माण करता है।

परिवार बालक के जीवन की पहली पाठशाला है, जहाँ से उसका सर्वांगीण विकास प्रारम्भ होता है। विद्यालय और समाज से पहले बालक परिवार में रहकर जीवन के मूल अनुभव प्राप्त करता है। परिवार न केवल जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है, बल्कि भावनात्मक सुरक्षा, सामाजिक मूल्य और जीवन-कौशल भी प्रदान करता है। नीचे बाल विकास के प्रत्येक क्षेत्र में परिवार की भूमिका को और अधिक विस्तार से प्रस्तुत किया गया है—

1. शारीरिक विकास (Physical Development) **में परिवार की भूमिका**—परिवार बालक में शारीरिक विकास की नींव रखता है। संतुलित आहार, स्वच्छता, स्वास्थ्य देखभाल, टीकाकरण और सुरक्षित वातावरण परिवार की जिम्मेदारी होती है। माता-पिता द्वारा खेल, व्यायाम और दैनिक गतिविधियों में भागीदारी से बालक की मांसपेशियों, हड्डियों और मोटर कौशल का विकास होता है। पर्याप्त नींद, नियमित दिनचर्या और बीमारी के समय उचित देखभाल भी शारीरिक विकास को प्रभावित करती है।

परिवार बालक के शारीरिक विकास की आधारशिला है। गर्भावस्था के समय माँ का पोषण, स्वास्थ्य और मानसिक स्थिति बालक के विकास को प्रभावित करती है। जन्म के बाद उचित स्तनपान, संतुलित आहार, स्वच्छता, टीकाकरण और नियमित स्वास्थ्य जाँच परिवार की जिम्मेदारी होती है। घर में खेलने का सुरक्षित वातावरण, शारीरिक गतिविधियों के लिए प्रोत्साहन और मोबाइल/टीवी के सीमित उपयोग से बालक की शारीरिक क्षमता, सहनशक्ति और मोटर कौशल का विकास होता है।

2. संज्ञानात्मक विकास (Cognitive Development) **में परिवार की भूमिका**—संज्ञानात्मक विकास का सम्बन्ध सोचने, समझने, स्मरण करने और समस्या समाधान की क्षमता से है। परिवार बालक को प्रारम्भिक अनुभव, उत्तेजनाएँ और सीखने के अवसर प्रदान करता है। कहानी सुनाना, प्रश्न पूछना, खिलौनों के माध्यम से सीखना, घर का वातावरण समृद्ध बनाना और जिज्ञासा को प्रोत्साहित करना संज्ञानात्मक विकास को तेज करता है। माता-पिता का सकारात्मक दृष्टिकोण और सीखने के प्रति उत्साह बालक की बौद्धिक क्षमता को बढ़ाता है।

बालक के सोचने-समझने की शक्ति परिवार में मिले अनुभवों से विकसित होती है। माता-पिता द्वारा प्रश्न पूछना, चर्चा करना, दैनिक जीवन की समस्याओं को हल करने के अवसर देना और खोजपरक गतिविधियों में शामिल करना संज्ञानात्मक विकास को बढ़ावा देता है। पुस्तकों, चित्रों, खेलों और रचनात्मक कार्यों से बालक की कल्पनाशक्ति, स्मृति और तार्किक सोच का विकास होता है। परिवार का बौद्धिक वातावरण जितना समृद्ध होगा, बालक की सीखने की क्षमता उतनी ही बेहतर होगी।

3. सामाजिक-भावनात्मक विकास (Socio-Emotional Development) **में परिवार की भूमिका**—परिवार बालक को प्रेम, सुरक्षा और अपनत्व का भाव देता है, जिससे भावनात्मक विकास होता है। माता-पिता और अन्य सदस्यों के साथ सम्बन्धों के माध्यम से बालक विश्वास, सहानुभूति, सहयोग और आत्म-नियंत्रण सीखता है। परिवार में अनुशासन, स्नेह और संवाद का संतुलन बालक को भावनात्मक रूप से स्थिर बनाता है। पारिवारिक वातावरण में ही बालक के आत्म-सम्मान और आत्म-विश्वास की नींव रखता है।

परिवार बालक को प्रेम, सुरक्षा और अपनापन प्रदान करता है, जिससे उसका भावनात्मक संतुलन विकसित होता है। माता-पिता के साथ संवाद, स्नेह और सहयोग से बालक भावनाओं की अभिव्यक्ति, सहानुभूति और आत्म-नियंत्रण सीखता है। भाई-बहनों और अन्य सदस्यों के साथ सम्बन्ध सामाजिक व्यवहार, साझेदारी और संघर्ष के समाधान के कौशल सिखाते हैं। सकारात्मक पारिवारिक वातावरण बालक में आत्म-विश्वास और सामाजिक दक्षता उत्पन्न करता है।

4. नैतिक विकास (Moral Development) **में परिवार की भूमिका**—नैतिक विकास का आरम्भ परिवार से ही होता है। सत्य-असत्य, सही-गलत, ईमानदारी, जिम्मेदारी और सहानुभूति जैसे मूल्य परिवार के व्यवहार से बालक में विकसित होते हैं। माता-पिता का स्वयं नैतिक आचरण करना, नियम बनाना और उनके पालन का उदाहरण प्रस्तुत करना बालक के नैतिक विकास में सहायक होता है। कहानियाँ, धार्मिक- सांस्कृतिक परम्पराएँ और पारिवारिक संस्कार नैतिक चेतना को मजबूत करते हैं।

नैतिक मूल्यों की प्रथम शिक्षा परिवार में ही मिलती है। माता-पिता का आचरण, अनुशासन की शैली और निर्णय लेने की प्रक्रिया बालक के नैतिक विकास को प्रभावित करती है। सत्य बोलना, ईमानदारी, जिम्मेदारी, करुणा और दूसरों का सम्मान जैसे मूल्य परिवार के दैनिक व्यवहार से बालक में विकसित होते हैं। धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक परम्पराएँ भी नैतिक चेतना को सुदृढ़ करती हैं।

5. भाषा विकास (Language Development) **में परिवार की भूमिका**—भाषा विकास में परिवार की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि बालक पहली भाषा परिवार से ही सीखता है। माता-पिता से संवाद, बातचीत, गीत, कहानियाँ और दैनिक गतिविधियों में भाषा का प्रयोग बालक की शब्दावली, उच्चारण और अभिव्यक्ति क्षमता को बढ़ाता है। सकारात्मक और प्रोत्साहनपूर्ण भाषा वातावरण बालक के प्रभावी सम्प्रेषण कौशल को विकसित करता है।

इस प्रकार बाल विकास में सभी क्षेत्रों में परिवार की भूमिका आधारभूत और निर्णायक होती है। परिवार द्वारा प्रदान किया गया स्नेहपूर्ण, सुरक्षित और प्रेरणादायक वातावरण बालक के सर्वांगीण विकास को सुनिश्चित करता है। इसलिए परिवार को बाल विकास की प्रथम और सबसे महत्वपूर्ण संस्था माना गया है।

विकास के विभिन्न क्षेत्रों में सहकर्मी समूह (Peers) की भूमिका

सहकर्मी वे बच्चे होते हैं जो आयु, रुचि, अनुभव या सामाजिक स्तर की दृष्टि से लगभग समान होते हैं और जिनके साथ बालक नियमित रूप से समय बिताता है। विद्यालय, खेल का मैदान और पड़ौस सहकर्मी समूह के प्रमुख क्षेत्र है। बाल विकास में सहकर्मी समूह एक महत्वपूर्ण सामाजिक संदर्भ प्रदान करता है, जहाँ बालक परिवार से बाहर स्वतंत्र रूप से व्यवहार करना सीखता है।

विशेषताएँ (विकास के विभिन्न क्षेत्रों में भूमिका)

1. शारीरिक विकास—सहकर्मियों के साथ खेल-कूद, समूह खेल और शारीरिक गतिविधियों से बालक की मांसपेशियाँ मजबूत होती हैं तथा संतुलन, गति और समन्वय क्षमता का विकास होता है।

2. संज्ञानात्मक विकास—सहकर्मी समूह में विचारों का आदान- प्रदान, प्रतिस्पर्धा और सहयोग से सोचने, तर्क करने तथा समस्या समाधान की क्षमता विकसित होती है।

3. सामाजिक-भावानात्मक विकास—मित्रता, सहयोग, नेतृत्व, समायोजन और संघर्ष समाधान जैसे–सामाजिक कौशल सहकर्मियों के माध्यम से विकसित होते हैं। इसमें आत्म-सम्मान और भावनात्मक नियंत्रण भी बढ़ता है।

4. नैतिक विकास—सहकर्मी समूह में नियमों का पालन, निष्पक्षता, साझा करना और जिम्मेदारी की भावना विकसित होती है।

5. भाषा विकास—सहकर्मियों के साथ बातचीत, खेल और समूह गतिविधियों से शब्दावली, अभिव्यक्ति और सम्प्रेषण कौशल का विकास होता है।

इस प्रकार सहकर्मी समूह बालक के सर्वांगीण विकास में एक प्रभावशाली भूमिका निभाता है।

विकास के विभिन्न क्षेत्रों में सहकर्मी (Peers) एवं विद्यालय की भूमिका

सहकर्मी (Peers) वे बच्चे होते हैं जो आयु, विकास स्तर और अनुभव की दृष्टि से लगभग समान होते हैं तथा जिनके साथ बालक नियमित रूप से सम्पर्क में रहता है। विद्यालय एक औपचारिक संस्था है जहाँ बालक संगठित रूप से सीखता है। (आधारभूत अवस्था Foundational Stage प्राय: 3-8 वर्ष) में बालक का विकास अत्यंत तीव्र होता है। इस अवस्था में सहकर्मी और विद्यालय मिलकर बालक के शारीरिक, संज्ञानात्मक, सामाजिक-भावनात्मक, नैतिक तथा भाषायी विकास को गहराई से प्रभावित करते हैं।

विशेषताएँ (विकास के विभिन्न क्षेत्रों में भूमिका)

1. शारीरिक विकास—सहकर्मियों के साथ खेल, दौड़, कूद, नृत्य और गतिविधि-आधारित सीख शारीरिक विकास को प्रोत्साहित करती है। विद्यालय का सुरक्षित वातावरण, खेल सामग्री और समयबद्ध गतिविधियाँ मोटर कौशल, संतुलन और समन्वय को विकसित करती है। सहकर्मियों के साथ खेलना बालक को सक्रिय, स्वस्थ और ऊर्जावान बनाता है।

2. संज्ञानात्मक विकास—सहकर्मी समूह में सहभागिता, खेल-आधारित कार्य, समूह गतिविधियाँ और शिक्षक द्वारा नियोजित अनुभव बालक की सोच, ध्यान, स्मृति और समस्या समाधान क्षमता को विकसित करते हैं। विद्यालय में चित्र, कहानियाँ, पहेलियाँ और प्रयोगात्मक गतिविधियाँ जिज्ञासा और रचनात्मकता को बढ़ाती हैं।

3. सामाजिक-भावानात्मक विकास—इस अवस्था में बालक सहकर्मियों से मित्रता करना, साझा करना, प्रतीक्षा करना और भावनाओं की अभिव्यक्ति सीखता है। विद्यालय का सहायक और स्नेहपूर्ण वातावरण आत्मविश्वास, आत्म-सम्मान और भावनात्मक सुरक्षा प्रदान करता है। शिक्षक मार्गदर्शक की भूमिका में सामाजिक व्यवहार को दिशा देते हैं।

4. नैतिक विकास—सहकर्मियों के साथ नियमों का पालन, बारी लेना और निष्पक्ष खेल नैतिक मूल्यों की नींव रखता है। विद्यालय में सरल, नियम, दिनचर्या और शिक्षक का आदर्श व्यवहार सही-गलत की समझ विकसित करता है। कहानियों और गतिविधियों के माध्यम से ईमानदारी, सहयोग और सम्मान जैसे मूल्य विकसित होते हैं।

5. भाषा विकास—सहकर्मियों के साथ संवाद, खेल, गीत और समूह चर्चा भाषा विकास को तीव्र बनाती है। विद्यालय में मातृभाषा/बहुभाषिक परिवेश, कहानी-कथन और संवादात्मक शिक्षण से शब्दावली उच्चारण और अभिव्यक्ति क्षमता का विकास होता है।

सहकर्मी और विद्यालय मिलकर बालक के सर्वांगीण विकास की मजबूत नींव रखते हैं और उसे आगे की शिक्षा के लिए तैयार करते हैं।

विकास के विभिन्न क्षेत्रों में विकास : प्रारम्भिक/तैयारी अवस्था (Preparatory Stage)

तैयारी अवस्था (Preparatory Stage) बाल विकास की वह अवस्था है जो सामान्यत: 8 से 11 वर्ष की आयु के बीच मानी जाती है। इस चरण में बालक आधारभूत शिक्षा से आगे बढ़कर अधिक संगठित, विषय-आधारित कौशलों-केन्द्रित सीखने के लिए तैयार होता है। इस अवस्था में शारीरिक, संज्ञानात्मक, सामाजिक-भावनात्मक, नैतिक तथा भाषा विकास अपेक्षाकृत स्थिर और परिपक्व रूप दिखाई देने लगता है।

विशेषताएँ (विकास के विभिन्न क्षेत्रों में)

1. शारीरिक विकास—शरीर की वृद्धि निरन्तर होती है, मांसपेशियों में मजबूती आती है और सूक्ष्म व स्थूल मोटर कौशल बेहतर होते हैं।

2. संज्ञानात्मक विकास—तर्कशक्ति, स्मरण क्षमता और समस्या समाधान की योग्यता विकसित होती है। बालक अमूर्त सोच की ओर अग्रसर होता है

3. सामाजिक-भावानात्मक विकास—सहकर्मी समूह का प्रभाव बढ़ता है, सहयोग, नेतृत्व और आत्म-नियंत्रण विकसित होता है।

4. नैतिक विकास—सही-गलत की समझ नष्ट होने लगती है और नियमों व मूल्यों का पालन करने की प्रवृत्ति बढ़ती है।

दीर्घ एवं लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1. सामाजिक विकास क्या है ?

उत्तर—कोई भी व्यक्ति जन्म से ही सामाजिक नहीं होता। प्रत्येक व्यक्ति को समाज की परिपाटी (Customs) तथा मान्य आचरण के सिद्धान्तों के अनुकूल ही अपने आचरण और व्यवहार को ढालना पड़ता है। बालक की अपने समाज की भाषा, संकेत तथा अभिव्यक्ति के तरीके सीखने पड़ते हैं। व्यक्तित्व का विकास समाज में रहकर ही होता है। जन्म के उपरान्त व्यक्ति समाज तथा वातावरण से प्रभावित होता रहता है और इस प्रभाव से ही उसके व्यक्तित्व का निर्माण होता है।

सामाजिक विकास का तात्पर्य विकास की उस प्रक्रिया से है जिसके द्वारा व्यक्ति सामाजिक वातावरण के साथ समायोजन करता है, सामाजिक नियमों के अनुरूप अपनी इच्छाओं एवं आवश्यकताओं पर नियन्त्रण करता है, दूसरों के प्रति अपने कर्तव्यों का अनुभव करता है तथा लोगों के प्रति अच्छे सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करता है। इस प्रकार समाज में दूसरों के साथ अनुकूलन करने की योग्यता को सामाजिक विकास कहते हैं। सामाजिक विकास का अभिप्राय भली-भाँति समझने के लिए विद्वानों द्वारा प्रस्तुत परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं—

हरलॉक के अनुसार, "सामाजिक विकास का अर्थ सामाजिक सम्बन्धों में परिपक्वता को प्राप्त करता है।"

सोरेन्सन के अनुसार, "सामाजिक अभिवृद्धि और विकास का तात्पर्य है—अपनी और दूसरों की उन्नति के लिए योग्यता वृद्धि।"

प्रश्न 2. मानसिक विकास से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—मानसिक विकास का आशय ज्ञान भण्डार में वृद्धि से है। मानसिक विकास की प्रक्रिया आजीवन चलती रहती है। मानसिक विकास का अर्थ मानसिक शक्तियों का उदय होना तथा व्यक्ति में उस क्षमता का विकास होना है, जिससे वह परिस्थितियों के अनुकूल अपने को समायोजित कर सके। मानसिक विकास के अन्तर्गत समझने की शक्ति, स्मरण करने की शक्ति, ध्यान केन्द्रित करने की क्षमता, विचार, तर्क, समस्या-समाधान करने की शक्ति आदि सम्मिलित है। मानसिक विकास शक्ति में होने वाली सूझ-बूझ है, जिसके परिणामस्वरूप उसके व्यवहार में परिमार्जन होता हैं।

प्रश्न 3. मानसिक विकास के विभिन्न पक्षों के नाम लिखिए।

उत्तर—मानसिक पक्ष

मानसिक विकास कई प्रक्रियाओं का पुंज होता है। मनोवैज्ञानिकों ने इसके अन्तर्गत निम्न योजनाओं को सम्मिलित किया है—

1. संवेदन (Sensation), 2. निरीक्षण (Observation), 3. कल्पना (Imagination), 4. चिन्तन (Thinking), 5. निर्णय (Judgement), 6. बुद्धि (Intelligence), 7. रुचि एवं अभिव्यक्ति (Interest and Attitude), 8. प्रत्यक्षीकरण (Perception), 9. ध्यान (Attention), 10. तर्क (Reasoning), 11. सीखना (Learning), 12. स्मरण-विस्मरण (Remembering & Forgetting)।

प्रश्न 4. बाल विकास के विभिन्न क्षेत्रों का वर्णन कीजिए तथा उनके इनके पारस्परिक संबंध को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—बाल विकास एक समग्र प्रक्रिया है जिसमें शारीरिक, संज्ञानात्मक, सामाजिक-भावनात्मक, नैतिक एवं भाषा विकास शामिल हैं। शारीरिक विकास से बच्चे की गति, समन्वय और स्वास्थ्य का विकास होता है। संज्ञानात्मक विकास सोचने, समझने और समस्या-समाधान की क्षमता को बढ़ाता है। सामाजिक-भावनात्मक विकास बच्चे को भावनाओं की पहचान, आत्म-नियंत्रण और सामाजिक सम्बन्धों में सक्षम बनात है। नैतिक विकास सही-गलत की समझ विकसित करता है, जबकि भाषा विकास सम्प्रेषण और अभिव्यक्ति को सशक्त करता है। ये सभी क्षेत्र एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं और एक क्षेत्र का विकास अन्य क्षेत्रों को भी प्रभावित करता है।

प्रश्न 5. आधारभूत एवं प्रारम्भिक/तैयारी चरण के शिक्षार्थियों के विकास में परिवार एवं सहपाठी समूह की भूमिका का विश्लेषण कीजिए।

उत्तर—आधारभूत एवं तैयारी चरण में परिवार बच्चे का पहला शिक्षण वातावरण होता है। परिवार पोषण, सुरक्षा, प्रेम और सीखने के अवसर प्रदान करता है। सहपाठी समूह के साथ अंत:क्रिया से सहयोग, साझा करना, नेतृत्व और सामाजिक नियम सीखने में सहायता मिलती है। इस चरण में सकारात्मक पारिवारिक वातावरण और स्वस्थ सहपाठी सम्बन्ध समग्र विकास को प्रोत्साहित करते हैं।

प्रश्न 6. आधारभूत एवं प्रारम्भिक/तैयारी चरण में विद्यालय की भूमिका को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—विद्यालय बच्चे के विकास के लिए संरचित अवसर प्रदान करता है। खेल, गतिविधि-आधारित शिक्षण और अनुभवात्मक अधिगम के माध्यम से विद्यालय शारीरिक, संज्ञानात्मक और भाषा विकास को बढ़ावा देता है। शिक्षक सामाजिक-भावनात्मक एवं नैतिक विकास के लिए आदर्श प्रस्तुत करते हैं। विद्यालय का सुरक्षित और समावेशी वातावरण बच्चों के आत्मविश्वास और सीखने की रुचि को बढ़ाता है।

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1. शारीरिक विकास किससे सम्बन्धित है?

उत्तर—शारीरिक विकास शरीर की वृद्धि से सम्बन्धित है।

प्रश्न 2. सोचने-समझने की क्षमता

उत्तर—सोचने-समझने की क्षमता—संज्ञानात्मक विकास।

प्रश्न 3. भावनाओं एवं सामाजिक सम्बन्धों का विकास

उत्तर—सामाजिक-भावनात्मक विकास।

प्रश्न 4. सही-गलत की समझ क्या है?

उत्तर—नैतिक विकास।

प्रश्न 5. सम्प्रेषण का माध्यम क्या है?

उत्तर—सम्प्रेषण का माध्यम भाषा है।

प्रश्न 6. आधारभूत चरण में सीखने का प्रमुख साधन क्या है?

उत्तर—आधारभूत चरण में सीखने का प्रमुख साधन खेल है।

प्रश्न 7. विकास का समग्र स्वरूप है।

उत्तर—विकास का समग्र स्वरूप बहुआयामी है।

प्रश्न 8. बच्चे का प्रथम शिक्षण वातावरण
उत्तर—परिवार है।

प्रश्न 9. सहपाठी समूह का प्रभाव क्या है?
उत्तर—सहपाठी समूह का प्रभाव सामाजिक कौशल से है।

प्रश्न 10. विद्यालय में विकास का प्रमुख कारक कौन है?
उत्तर—विद्यालय में विकास का प्रमुख कारक शिक्षक है।

प्रश्न 11. भाषा विकास से जुड़ी क्षमता क्या है?
उत्तर—भाष विकास से जुड़ी क्षमता–अभिव्यक्ति।

प्रश्न 12. नैतिक विकास का आधार क्या है?
उत्तर—नैतिक विकास का आधार मूल्य है।

प्रश्न 13. शारीरिक विकास का संकेत क्या है?
उत्तर—शारीरिक विकास का संकेत गति समन्वय है।

प्रश्न 14. तैयारी चरण का उद्देश्य
उत्तर—तैयारी चरण का उद्देश्य—आधार सुदृढ़ करना।

प्रश्न 15. सुरक्षित वातावरण का प्रभाव बताइए।
उत्तर—सुरक्षित वातावरण का प्रभाव आत्मविश्वास है।

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. शारीरिक विकास का सम्बन्ध किससे है?
(अ) भावनाओं से (ब) शरीर की वृद्धि से
(स) नैतिकता से (द) भाषा से। ❑ **उत्तर** (ब)

2. समस्या-समाधान क्षमता किस विकास से सम्बन्धित है?
(अ) शारीरिक (ब) संज्ञानात्मक
(स) सामाजिक (द) नैतिक। ❑ **उत्तर**—(ब)

3. सामाजिक-भावनात्मक विकास का प्रमुख तत्व है—
(अ) स्मरण शक्ति (ब) आत्म-नियंत्रण
(स) शारीरिक शक्ति (द) भाषा ज्ञान। ❑ **उत्तर**—(ब)

4. नैतिक विकास का सम्बन्ध किससे है?
(अ) खेल से
(ब) सही-गलत की समझ से
(स) भाष से (द) गति से। ❑ **उत्तर**—(ब)

5. भाषा विकास का मुख्य उद्देश्य है—
(अ) दौड़ना (ब) सोच विकसित करना
(स) सम्प्रेषण (द) अनुशासन।
❑ **उत्तर**—(स)

6. आधारभूत चरण में सीखने की सर्वोत्तम विधि है—
(अ) व्याख्यान (ब) खेल एवं गतिविधि
(स) लिखित परीक्षा (द) रंटत। ❑ **उत्तर**—(ब)

7. विकास का बहुआयामी स्वरूप दर्शाता है—
(अ) एक क्षेत्र का विकास
(ब) केवल शारीरिक विकास
(स) सभी क्षेत्रों का विकास
(द) केवल भाषा विकास। ❑ **उत्तर**—(स)

8. बच्चा का पहला सामाजिक समूह कौन-सा है?
(अ) विद्यालय (ब) सहपाठी
(स) परिवार (द) समाज। ❑ **उत्तर**—(स)

9. सहपाठी समूह से बच्चे क्या सीखते हैं?
(अ) केवल ज्ञान
(ब) सहयोग एवं प्रतिस्पर्धा
(स) केवल भाषा
(द) केवल अनुशासन। ❑ **उत्तर**—(ब)

10. विद्यालय का सुरक्षित वातावरण किसे बढ़ाता है?
(अ) भय (ब) आत्मविश्वास
(स) तनाव (द) असुरक्षा। ❑ **उत्तर**—(ब)

11. शिक्षक किस विकास में आदर्श की भूमिका निभाते हैं?
(अ) शारीरिक (ब) नैतिक
(स) जैविक (द) आर्थिक। ❑ **उत्तर**—(ब)

12. संज्ञानात्मक विकास से सम्बन्धित प्रक्रिया है—
(अ) भावनात्मक विकास (ब) चिंतन
(स) सामाजिक सहभागिता
(द) शारीरिक वृद्धि। ❑ **उत्तर**—(ब)

13. भाषा विकास का प्रभाव पड़ता है—
(अ) केवल बोलने पर (ब) केवल लिखने पर
(स) सम्प्रेषण और सोच पर
(द) केवल पढ़ने पर। ❑ **उत्तर**—(स)

14. तैयारी चरण का मुख्य उद्देश्य है—
(अ) परीक्षा (ब) आधार को सुदृढ़ करना
(स) प्रतियोगिता (द) अनुशासन।
❑ **उत्तर**—(ब)

15. सामाजिक-भावनात्मक विकास से विकसित होता है—
(अ) सहानुभूति (ब) गति
(स) स्मृति (द) तर्क। ❑ **उत्तर**—(अ)

16. किशोरावस्था को किस विद्वान ने उथल-पुथल की अवस्था कहा है—
(अ) स्टेनले हॉल (ब) क्लार्क
(स) वेबर (द) विलियम जेम्स
❑ **उत्तर**—(अ)

17. एक ऐसी मानसिक प्रक्रिया जिसमें बालक/व्यक्ति किसी नयी परिस्थिति का सामना करने अथवा किसी समस्या का समाधान करने में अपने पूर्व अनुभव का प्रयोग बनता है—
(अ) कल्पना (ब) आत्मसातन
(स) समंजन (द) चिन्तन। ❑ **उत्तर**—(द)

18. वाटसन ने प्राथमिक संवेगों के सिद्धान्त के अन्तर्गत शिशुओं के भीतर जन्म से ही विद्यमान कितने संवेगों को बताया है—
(अ) 4 (ब) 6
(स) 5 (द) 3. ❑ **उत्तर**—(द)

19. शिशु का शारीरिक विकास तीव्र गति से होता है—
(अ) प्रथम वर्ष में (ब) दूसरे वर्ष में
(स) चौथे वर्ष में (द) प्रथम तीन वर्षों में।
❑ **उत्तर**—(द)

20. आवाज में भारीपन आता है—
(अ) शैशवावस्था में (ब) बाल्यावस्था में
(स) किशोरावस्था में (द) प्रौढ़ावस्था में।
❑ **उत्तर**—(स)

21. मानसिक विकास अपनी उच्चतम सीमा पर पहुँचता है—
(अ) 5-10 वर्ष की आयु में
(ब) 10-15 वर्ष की आयु में
(स) 15-20 वर्ष की आयु में
(द) उपरोक्त में से कोई नहीं। ❑ उत्तर—(स)

22. "स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क निवास करता है।" कथन है—
(अ) सुकरात (ब) अरस्तू
(स) स्किनर (द) थार्नडाइक।
❑ उत्तर—(ब)

23. "खेल का मैदान बालक का निर्माण स्थल है।" कथन है—
(अ) स्किनर का (ब) अरस्तू का
(स) थार्नडाइक का (द) वुडवर्थ का।
❑ उत्तर—(अ)

24. "संवेग, व्यक्ति की उत्तेजित अवस्था है।" कथन दिया—
(अ) रॉस ने (ब) यंग ने
(स) वुडवर्थ ने (द) स्किनर ने।
❑ उत्तर—(ब)

25. संवेगों की संख्या है—
(अ) 10 (ब) 8
(स) 12 (द) 14. ❑ उत्तर—(स)

26. "चरित्र, आदतों का पुन्ज है।" कथन है—
(अ) डमविल ने (ब) क्रो व क्रो का
(स) स्माइल का (द) रॉस का। ❑ उत्तर—(द)

27. बालक के आत्मकेन्द्रित व्यवहार का आरम्भ उसकी निम्नलिखित अवस्था में होता है—
(अ) शैशवावस्था में (ब) बाल्यावस्था में
(स) किशोरावस्था में (द) प्रौढ़ावस्था में।
❑ उत्तर—(द)

28. मूल प्रवृत्तियों की संख्या होती है—
(अ) पाँच (ब) आठ
(स) दस (द) चौदह। ❑ उत्तर—(स)

29. "संवेग सभी प्रकार के विकास की रीढ़ है" कथन है—
(अ) पावलव को (ब) स्किनर का
(स) मैक्डूगल का (द) गैरेट का। ❑ उत्तर—(अ)

30. नैसर्गिक संवेग है—
(अ) ईर्ष्या (ब) प्रेम
(स) आश्चर्य (द) घृणा। ❑ उत्तर—(द)

31. सामाजिक विकास का सही अर्थ है—
(अ) संस्थाओं का विकास
(ब) लोगों का एक साथ रहना
(स) समाज से अलग रहना
(द) समाज के अनुकूल चरित्र निर्माण। ❑ उत्तर—(द)

32. निम्न में से कौन-सा प्रकार मनोवैज्ञानिक है—
(अ) बहिर्मुखी (ब) सैद्धान्तिक
(स) भक्तिहीन (द) राजनैतिक।
❑ उत्तर—(अ)

33. क्रेचमर ने कितनी तरह के व्यक्तित्व बताए—
(अ) चार (ब) तीन
(स) दो (द) पाँच। ❑ उत्तर—(अ)

34. यंग ने व्यक्तित्व के प्रकार बताए—
(अ) समाज रचना के आधार पर
(ब) मनोवैज्ञानिक के आधार पर
(स) शरीर रचना के आधार पर
(द) उपर्युक्त सभी। ❑ उत्तर—(ब)

35. आत्म-केन्द्रित व्यक्ति का व्यक्तित्व होता है—
(अ) अन्तर्मुखी (ब) बहिर्मुखी
(स) उभयमुखी (द) सभी। ❑ उत्तर—(अ)

36. सुमायोजित व्यक्ति का लक्षण नहीं है—
(अ) परिस्थिति से लाभ उठाने के लिए
(ब) सुखी जीवन जीने वाला
(स) समाजसेवी
(द) लोगों को बाधा पहुचाने वाला। ❑ उत्तर—(द)

37. "कल्पना की सामग्री स्मृतियाँ हैं" कथन है—
(अ) बोरिंग व अन्य (ब) गेट्स व अन्य
(स) रेबर्न (द) मैक्डूगल। ❑ उत्तर—(अ)

38. जिस कल्पना में व्यक्ति दूसरों के विचारों के आधार पर नये विचारों की कल्पना करने लगता है, उसे कहते हैं—
(अ) सृजनात्मक कल्पना (ब) कार्यसाधक कल्पना
(स) सौन्दर्यात्मक कल्पना
(द) उपात्दक कल्पना। ❑ उत्तर—(द)

39. डीवी के अनुसार तर्क के सोपान हैं—
(अ) चार (ब) दो
(स) तीन (द) पाँच। ❑ उत्तर—(द)

40. चिन्तन के साधनों में एक है—
(अ) संकेत (ब) रटना
(स) गुणों का विश्लेषण (द) सामान्यीकरण।
❑ उत्तर—(अ)

41. तर्क के मुख्यत: प्रकार होत हैं—
(अ) दो (ब) चार
(स) तीन (द) पाँच। ❑ उत्तर—(अ)

42. "चिन्तन, मानसिक क्रिया का ज्ञानात्मक पहलू है" कथन—
(अ) रॉस (ब) वुडवर्थ
(स) वेलेन्टाइन (द) मैक्डूगल। ❑ उत्तर—(अ)

43. जीन पियाजे ने बालक के संज्ञानात्मक विकास के कितने अवस्थाओं का वर्णन किया है—
(अ) 3 (ब) 4
(स) 6 (द) 5. ❑ उत्तर—(ब)

44. वह मानवीय योग्यता जिसके द्वारा व्यक्ति किसी नवीन रचना या विचार को प्रस्तुत करता है, कहलाता है—
(अ) सृजनात्मकता (ब) प्रत्यक्षीकरण
(स) प्रक्षेपण (द) उदात्तीकरण।
❑ उत्तर—(अ)

5

खेल एवं विकास

[PLAY & DEVELOPMENT]

बालक के सामाजिक विकास के लिए खेल आवश्यक है। खेल एक ऐसी प्रक्रिया है जो कि बच्चे को आनन्द देती है तथा उसमें ताजगी, प्रसन्नता व स्फूर्ति लाती है।

''खेल वह प्रक्रिया है जो प्राप्त होने वाले आनन्द के लिए की जाती है किन्तु इसके परिणाम पर कोई विचार नहीं करता है।''

परिभाषा से स्पष्ट है कि खेल एक स्वाभाविक प्रक्रिया है जिसके लिए कहना नहीं पड़ता है। यह आत्म-प्रेरित होती है। इसमें आनन्द प्राप्त होता है तथा उसी आनन्द की प्राप्ति के लिए खेल खेला जाता है। वर्तमान समय में खिलौने इस प्रकार के बनाये जा रहे हैं जो बालक को आनन्द प्रदान करने के साथ-साथ महत्वपूर्ण तथा कौशलों का विकास करायें जिससे बालक का बौद्धिक विकास हो।

बालक के जीवन में मुख्य दो क्षेत्र होते हैं—(1) खेल, (2) कार्य। बाल्यावस्था तक बालक कार्य को नहीं जानता है। उसका मुख्य क्षेत्र खेल ही होता है। आज से कुछ वर्षों पूर्व तक यह माना जाता था कि जो व्यक्ति लगन से कार्य करता है वही अपने जीवन में सफल होगा उसे ही समाज प्रतिष्ठा भी देता था। मनुष्य द्वारा की गई उद्देश्यपूर्ण क्रियाएँ जिनसे लाभ होता था उसे कार्य माना जाता था तथा अन्य को खेल माना जाता था। खेल तथा कार्य बिल्कुल अलग-अलग क्रियाएँ मानी जाती थीं।

वर्तमान समय में मनोविज्ञान विकास ने खेल के महत्व को समझा तथा खेल के प्रति व्यक्तियों को अपना दृष्टिकोण बदलने पर बाध्य किया है। वर्तमान समय में खेल को सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक माना जाता था क्योंकि शारीरिक व सामाजिक विकास के लिए खेल आवश्यक है। वर्तमान समय में अच्छे खिलाड़ी को नौकरी में भी प्राथमिकता दी जाती है। स्कूल कॉलेज में भी केवल शैक्षिक उपलब्धि प्राप्त करने वाले की अपेक्षा शिक्षा के साथ-साथ खेलों में प्रयोग होने वाले महत्व अधिक होता है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार कार्य तथा खेलों में कुछ अन्तर होता है; जैसे—

(1) खेल में बच्चा स्वंतत्र होता है जब चाहे खेले जब चाहे खेल बंद कर दे, किन्तु कार्य में ऐसी स्वतन्त्रता नहीं होती है क्योंकि कार्य रोजी-रोटी कमाने के लिए किया जाता है जो किसी के अधीन ही किया जाता है। उसके समय निश्चित होते हैं।

(2) खेल का उद्देश्य आनन्द प्राप्ति होती है इसीलिए बच्चा खेल में थकावट तथा अरोचकता महसूस नहीं होता है। कार्य मजबूरी में करना पड़ता है इसलिए अरुचिकर तथा थकाने वाले होता है। शुरु-शुरु में कार्य में अवश्य आनन्द आता है किन्तु नित्य ही एक ही काम होने से उबाऊपन आ जाता है। कार्य करने के पीछे आकर्षण उसमें मिलने वाला धन होता है जबकि खेल के पीछे उसमें मिलने वाला आनन्द होता है।

(3) खेल की प्रेरणा आन्तरिक (आनन्द) होती है जबकि कार्य की प्रेरणा बाह्य (धन) होती है।

(4) खेल में व्यक्ति दूसरों की इच्छा पर आश्रित नहीं होता है। किन्तु काम में व्यक्ति को दूसरों की इच्छा पर आश्रित होना पड़ता है।

(5) प्रौढ़ावस्था के बाद खेल के विकास की गति कम होने लगती है जबकि प्रौढ़ावस्था के बाद कार्य की गति खेल की अपेक्षा बढ़ जाती है।

(6) बच्चों का खेल बंद करने से उन्हें गुस्सा आता है, दुःख होता है कि किन्तु उनका कार्य बंद करने से उनमें ऐसी भावना नहीं आती है।

(7) खेल के लिए बच्चे किसी नियम से बंधे नहीं होते हैं क्योंकि खेल स्वाभाविक होते हैं जबकि कार्य के लिए नियम होते हैं।

(8) बच्चों को खेल में संतुष्टि मिलती है जबकि कार्य में सन्तुष्टि नहीं मिलती है।

(9) खेल में शक्ति काम की अपेक्षा कम व्यय होती है क्योंकि खेल बालकों के लिए रुचिकर होते हैं।

बच्चों के खेल की विशेषताएँ

बच्चों तथा प्रौढ़ों के खेलों के लक्ष्य गति तथा विशेषताओं में अन्तर होता है।

(1) बच्चों के खेल के विकास का एक क्रम निश्चित होता है। ध्यान से देखने पर ज्ञात होता है कि सबसे पहले खेल के **हाथों की क्रियाओं का विकास होता है।** सबसे पहले 3 माह की उम्र में जब बच्चे की दृष्टि ठहरने लगती है तो वह जिस वस्तु को देखता है उसे झपटने की कोशिश करता है। जब घुटने के बल चलना शुरू करता है तो वस्तुएँ देखकर उसके पीछे भागता है। अपनी वस्तुएँ छुपाये जाने परउन्हें ढूँढ़ने की कोशिश करता है। इसके बाद जब बच्चा 1 वर्ष का होता है तो खिलौनों से खेलना प्रारम्भ करता है। 2 वर्ष की उम्र तक वह खिलौनों को सजीव समझता है। खिलौनों से खेलने की प्रवृत्ति बढ़ती है तथा 8 वर्ष की उम्र तक खिलौनों से खेलना अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता है। इसके बाद 8-9 वर्ष तक वह खिलौने छोड़कर अन्य बच्चों के साथ समूह में खेलना शुरू कर देता है। नये बच्चों के बीच में उनसे नये खेल सीखता है। 9-10 वर्ष की उम्र में बच्चों के अन्य शौक विकसित होने लगते हैं। 10 वर्ष की उम्र के आसपास वह खेल में रुचि छोड़कर दिवास्वप्न के विषय बदलते रहते हैं।

(2) बालक अपने से बड़े तथा अन्य लोगों के खेल देखकर खेलता है। किन्तु हर पीढ़ी में बच्चे अपने से पिछली पीढ़ी के खेलों में कुछ नया जोड़ते हैं।

(3) जैसे-जैसे बच्चे की उम्र बढ़ती है उसके खेलने के अतिरिक्त पढ़ने लिखने व काम करने की क्रियाएँ बढ़ती हैं इसलिए बच्चों में खेल की क्रियाएँ कम हो जाती हैं। बच्चे बड़ी कक्षा में पढ़ने लगते हैं इसलिए पढ़ाई में अधिक समय देना पड़ता है। इसी प्रकार बच्चों के मित्रों की संख्या में कमी आ जाती है इसलिए बच्चों के खेल की क्रियाएँ कम होने लगती हैं।

(4) पूर्वाबाल्यावस्था तक बच्चे उन खेलों को पसंद करते हैं जिनमें शारीरिक क्रियाएँ अधिक हो, (दौड़ना, कूदना, फुटबाल खेलना) किन्तु उम्र बढ़ने के साथ-साथ शारीरिक क्रियाओं के अतिरिक्त उन खेलों को पसंद करते हैं जो मानसिक खेल हों, मानसिक योग्यताओं का विकास करें; जैसे–ताश, कैरम, रेडियो सुनना, टी.वी. देखना।

(5) पूर्वाबाल्यावस्था तक बालक के खेल अनौपचारिक होते हैं। वे कैसे भी कहीं भी कितने समय तक खेल सकते हैं। उन्हें खेलने के लिए विशेष, खिलौनों, पोशाक की आवश्यकता नहीं होती। उम्र बढ़ने के साथ-साथ बालकों के खेल औपचारिक होते जाते हैं। चूँकि अब वह खेलों के नियम जानने लगते हैं इसलिए वह नियमबद्ध होकर खेलते हैं।

(6) 3-4 वर्ष की उम्र तक लड़के-लड़कियों के खेल एक से होते हैं। इसके बाद स्कूल जाने पर खेलों में अन्तर आ जाता है।

(7) जैसे-जैसे उम्र बढ़ती है, खेलने वालों की संख्या तथा समय कम हो जाता है। उम्र बढ़ने पर बड़ी कक्षा में जाने पर पढ़ाई का बोझ बढ़ जाता है। स्कूल में अधिक समय देना पड़ता है इसलिए शारीरिक श्रम वाले खेलों की मात्रा कम हो जाती है तथा बच्चे खेल में समय भी कम देते हैं। इसी प्रकार प्रारम्भ में बच्चे किसी के भी साथ खेलने लगते हैं किन्तु उम्र बढ़ने के पर वे अपनी आयु तथा समूह के बच्चों के साथ खेलना पसंद करते हैं। उम्र बढ़ने के साथ-साथ वे कुछ चुने बच्चों के साथ ही खेलना पसंद करते हैं।

(8) आयु बढ़ने के साथ-साथ जैसे-जैसे बच्चों की शारीरिक तथा मानसिक योग्यता में वृद्धि तथा परिपक्वता आती है उनके खेलों की प्रक्रियाओं में विशिष्टता आती जाती है।

(9) खेल स्वयं में पूर्ण होता है उसमें कोई छिपा लक्ष्य नहीं होता है जो भी होता है प्रत्यक्ष होता है। इसका मुख्य लक्ष्य आनन्द प्राप्ति ही होता है।

(10) खेल बच्चों में चंचलता तथा स्फूर्ति लाता है। खेल में वालक अन्तिम परिणाम पर विचार नहीं करते हैं। अन्तिम परिणाम का विचार परिपक्वावस्था आने पर होता है, बच्चों में नहीं।

खेल के कार्य
(Functions of Play)

1. शारीरिक विकास का कार्य—खेल के दौरान बालक सोचता है, निर्णय लेता है और समस्याओं का समाधान करता है, जिससे संज्ञानात्मक विकास होता है।

2. सामाजिक विकास का कार्य—समूह खेलों से सहयोग, साझेदारी, नेतृत्व और नियमों का पालन सीखने में सहायता मिलती है।

3. भावनात्मक विकास का कार्य—खेल के माध्यम से बालक अपनी भावनाओं को व्यक्त करता है, तनाव कम करता है और आत्म-नियंत्रण सीखता है।

4. नैतिक विकास का कार्य—खेल बालक को निष्पक्षता, अनुशासन और ईमानदारी जैसे मूल्यों को सिखाता है।

5. रचनात्मकता एवं कल्पनाशक्ति का विकास—खेल बालक की कल्पनाशक्ति और सृजनात्मक अभिव्यक्ति को बढ़ावा देता है।

इस प्रकार खेल बालक के सर्वांगीण विकास का एक अनिवार्य और प्रभावी साधन है।

खेल और विकास : बाल विकास के विभिन्न पक्षों से सम्बन्ध
(Linkages with Various Aspect of Child Development)

खेल बालक के जीवन का अभिन्न अंग है और उसके सर्वांगीण विकास का सशक्त माध्यम है। खेल के माध्यम से बालक न केवल आनंद प्राप्त करता है, बल्कि शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, भावनात्मक, नैतिक और भाषायी विकास की प्रक्रिया को भी सहज रूप से आगे बढ़ाता है। खेल और विकास के बीच गहरा और प्रत्यक्ष सम्बन्ध पाया जाता है।

शारीरिक विकास की दृष्टि से खेल मांसपेशियों को मजबूत करता है, शारीरिक संतुलन, गति, सहनशक्ति और समन्वय क्षमता का विकास करता है। दोड़ना, कूदना और खेल-कूद की गतिविधियाँ बालक को स्वस्थ और सक्रिय बनाती हैं।

संज्ञानात्मक विकास में खेल महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। खेल के दौरान बालक सोचता है, योजना बनाता है, समस्या का समाधान करता है और नए अनुभव प्राप्त करता है, जिससे उसकी स्मरण शक्ति और तर्क क्षमता विकसित होती है।

सामाजिक विकास के संदर्भ में समूह खेल बालक को सहयोग, साझेदारी, नेतृत्व और नियमों का पालन सिखाते हैं। भावनात्मक विकास में खेल बालक को अपनी भावनाएँ व्यक्त करने, तनाव कम करने और आत्म-नियंत्रण सीखने में सहायता करता है।

नैतिक विकास में खेल निष्पक्षता, ईमानदारी और अनुशासन जैसे मूल्यों को विकसित करता है। भाषा विकास की दृष्टि से खेल संवाद, अभिव्यक्ति और शब्दावली के विकास को बढ़ावा देता है।

खेल के प्रकार एवं भेद
(Types of Kinds of Play)

खेल बालक की स्वाभाविक गतिविधि है, जिसके माध्यम से उसका शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और भावनात्मक विकास होता है। बाल विकास के संदर्भ में खेल को विभिन्न आधारों पर वर्गीकृत किया गया है। प्रत्येक प्रकार का खेल बालक के विकास के किसी-न-किसी पक्ष को सशक्त करता है।

1. शारीरिक खेल (Physical Play)—इस प्रकार के खेलों में दौड़ना, कूदना, चढ़ना, गेंद खेलना आदि शामिल हैं। इससे मांसपेशियों की मजबूती, संतुलन और समन्वय का विकास होता है

2. रचनात्मक खेल (Creative Play)—चित्र बनाना, मिट्टी से आकृतियाँ बनाना, नृत्य और संगीत जैसे खेल रचनात्मकता और कल्पना- शक्ति को विकसित करते हैं।

3. कल्पनात्मक खेल (Imaginative Play)—इसमें बालक कल्पना के आधार पर भूमिकाएँ निभाता है; जैसे–डॉक्टर-डॉक्टर या शिक्षक-शिक्षक खेलना। इससे सामाजिक और भावनात्मक विकास होता है।

4. सामाजिक खेल (Social Play)—समूह में खेले जाने वाले खेल, जैसे–कबड्डी या लूडो, सहयोग, नियम पालन और नेतृत्व सिखाते हैं।

5. शैक्षिक खेल (Educational Play)—पजल, शब्द खेल और गणितीय खेल सीखने को रोचक बनाते हैं और संज्ञानात्मक विकास करते हैं।

6. एकाकी खेल (Solitary Play)—जब बालक अकेले खेलता है, तब उसकी आत्मनिर्भरता और ध्यान क्षमता विकसित होती है।

इस प्रकार विभिन्न प्रकार के खेल बालक के सर्वांगीण विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

खेल, समूह गतिकी
(Games and Group Dynamics)

खेल केवल मनोरंजन का साधन नहीं है, बल्कि यह बच्चों के सामाजिक, भावनात्मक और व्यक्तित्व विकास का एक प्रभावी माध्यम है। जब बच्चे समूह में खेलते हैं, तब समूह गतिकी (Group Dynamics) सक्रिय होती है। समूह गतिकी का अर्थ है—समूह के सदस्यों के बीच होने वाली पारस्परिक क्रियाएँ, सम्बन्ध, भूमिकाएँ और व्यवहार। खेलों के माध्यम से बच्चे समूह में रहना, दूसरों के साथ समायोजन करना और समाजिक नियमों को समझना सीखते हैं।

खेल और समूह गतिकी के प्रमुख पहलू

1. सहयोग और सहभागिता—समूहों खेलों में बच्चे एक-दूसरे के साथ मिलकर लक्ष्य प्राप्त करना सीखते हैं, जिससे सहयोग और टीम भावना विकसित होती है।

2. नेतृत्व का विकास—खेलों में कुछ बच्चे स्वाभाविक रूप से नेतृत्व की भूमिका निभाते हैं, जिससे नेतृत्व क्षमता और निर्णय लेने का कौशल विकसित होता है।

3. नियमों और अनुशासन की समझ—समूह खेलों में नियमों का पालन अनिवार्य होता है। इससे बच्चों में अनुशासन, निष्पक्षता और उत्तरदायित्व की भावना आती है।

4. सामाजिक सम्पर्क और सम्प्रेषण—खेल बच्चों को संवाद करना, अपनी बात रखना और दूसरों की बात सुनना सिखात हैं, जिससे सामाजिक कौशल का विकास होता है।

5. संघर्ष समाधान—खेल के दौरान होने वाले मतभेद बच्चों को धैर्य, समझौता और समस्या समाधान की कला सिखाते हैं।

6. भावनात्मक विकास—जीत-हार का अनुभव बच्चों को भावनाओं और नियंत्रण और सहनशीलता सिखाता है।

इस प्रकार खेल और समूह गतिकी बच्चों को सामाजिक जीवन के लिए तैयार करती है और उनके सर्वांगीण विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

खेलों के नियम, समूह गतिकी तथा मतभेदों का समाधान

खेल बच्चों के विकास का एक महत्वपूर्ण माध्यम है, जहाँ वे केवल शारीरिक गतिविधियाँ ही नहीं करते, बल्कि सामाजिक व्यवहार, अनुशासन और पारस्परिक समझ भी सीखते हैं। समूह खेलों के नियम (Rules of Games) बच्चों के लिए व्यवहार की सीमाएँ निर्धारित करते हैं और उन्हें सामाजिक जीवन के लिए तैयार करते हैं। खेलों के दौरान उत्पन्न समूह गतिकी बच्चों को मतभेदों को समझने, बातचीत और संघर्षों का समाधान करने का अवसर प्रदान करती है।

खेलों के नियमों की भूमिका

(i) खेलों के नियम बच्चों की अनुशासन और निष्पक्षता सिखाते हैं।

(ii) नियम यह स्पष्ट करते हैं कि क्या स्वीकार्य है और क्या नहीं।

(iii) नियमों के पालन से बच्चों में जिम्मेदारी और आत्म-नियन्त्रण विकसित होता है।

(iv) नियम समान अवसर और सुरक्षित खेल सुनिश्चित करते हैं।

मतभेदों पर बातचीत करना (Negotiation of Differences) :

समूह खेलों में बच्चों के बीच जीत-हार, बारी लेने या भूमिका बाँटने को लेकर मतभेद उत्पन्न हो सकते हैं। ऐसे में बच्चे आपस में चर्चा करना, समझौता करना और दूसरों की राय को स्वीकार करन सीखते हैं। वे यह समझते हैं कि समूह में बने रहने के लिए सहयोग और लचीलापन आवश्यक है।

संघर्ष समाधान (Conflict Resolution) :

* खेल बच्चों को धैर्य और सहनशीलता सिखाते हैं।
* बच्चे नियमों के आधार पर विवाद सुलझाना सीखते हैं।
* वे माफी माँगना, माफ करना और पुनः खेल में शामिल होना सीखते हैं।
* शिक्षक या बड़े बच्चों की मार्गदर्शक भूमिका सकारात्मक समाधान में सहायक होती है।

इस प्रकार खेलों के नियम और समूह गतिकी बच्चों में सामाजिक समझ, संवाद, कौशल और शांतिपूर्ण संघर्ष समाधान की क्षमता विकसित करते हैं, जो जीवन भर उनके लिए उपयोगी है।

दीर्घ एवं लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1. खेल का अर्थ स्पष्ट कीजिए तथा बच्चों के विकास में इसके कार्यों का वर्णन कीजिए।

उत्तर—खेल बच्चे की स्वाभाविक गतिविधि है, जिसके माध्यम से वह आनंद के साथ सीखता है। खेल केवल मनोरंजन नहीं है, बल्कि यह शारीरिक, संज्ञानात्मक, सामाजिक-भावनात्मक, भाषा एवं नैतिक विकास का सशक्त माध्यम है। खेल के माध्यम से बच्चों की मांसपेशियों का विकास होता है, सोचने-समझने की क्षमता बढ़ती है, भावनात्मक अभिव्यक्ति होती है तथा सामाजिक सम्बन्ध मजबूत होते हैं। इस प्रकार खेल समग्र विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

प्रश्न 2. खेल के विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिए तथा उनके शैक्षिक महत्व को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—खेल को कई प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता है—स्वतंत्र खेल, संरचित खेल, कल्पनात्मक खेल, शारीरिक खेल, सामाजिक खेल एवं रचनात्मक खेल। स्वतंत्र खेल बच्चों को आत्म-अभिव्यक्ति का अवसर देता है, जबकि संरचित खेल नियमों के पालन की आदत विकसित करता है। कल्पनात्मक खेल सृजनात्मकता को बढ़ाता है और सामाजिक खेल सहयोग एवं सहभागिता सिखाते

हैं। प्रत्येक प्रकार का खेल किसी-न-किसी विकासात्मक पक्ष को सुदृढ़ करता है।

प्रश्न 3. खेल, समूह गतिकी एवं संघर्ष समाधान के सम्बन्ध को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—समूह खेलों में बचे नियमों का पालन करना, सहयोग करना, नेतृत्व एवं अनुशासन सीखते हैं। खेल के दौरान उत्पन्न मतभेद बच्चों कों बातचीत, समझौते और सहमति के माध्यम से समस्याओं का समाधान करना सिखाते हैं। इस प्रकार खेल बच्चों में सामाजिक कौशल, सहनशीलता एवं संघर्ष समाधान की क्षमता का विकास करता है।

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1. खेल का मूल स्वरूप क्या है?
उत्तर—स्वाभाविक गतिविधि।

प्रश्न 2. खेल का प्रमुख उद्देश्य क्या है?
उत्तर—आनन्द और सीख।

प्रश्न 3. शारीरिक विकास से जुड़ा खेल
उत्तर—दोड़ना-कूदना।

प्रश्न 4. कल्पनात्मक खेल किसे बढ़ाता है?
उत्तर—सृजनात्मकता।

प्रश्न 5. सामाजिक खेल का परिणाम क्या है?
उत्तर—सहयोग।

प्रश्न 6. नियमों वाले खेल कहलाते हैं?
उत्तर—संरचित खेल।

प्रश्न 7. स्वतंत्र खेल का लाभ क्या है?
उत्तर—आत्म-अभिव्यक्ति।

प्रश्न 8. खेल से विकसित कौशल बताइए।
उत्तर—सामाजिक कौशल।

प्रश्न 9. समूह खेलों की विशेषता बताइए।
उत्तर—सहभागिता।

प्रश्न 10. खेलों में मतभेद का समाधान किस प्रकार होता है?
उत्तर—संवाद से।

प्रश्न 11. खेल का सम्बन्ध किस विकास से नहीं है?
उत्तर—केवल अकादमिक नहीं।

प्रश्न 12. नेतृत्व का विकास कैसे होता है?
उत्तर—समूह खेलों से।

प्रश्न 13. खेल से भावनात्मक विकास कैसे होता है?
उत्तर—अभिव्यक्ति द्वारा।

प्रश्न 14. खेलों में नियम क्यों आवश्यक है?
उत्तर—अनुशासन हेतु।

प्रश्न 15. संघर्ष समाधान का गुण विकसित किससे होता है?
उत्तर—खेल के माध्यम से।

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. खेल का मुख्य उद्देश्य क्या है?
(अ) अनुशासन (ब) आनंद के साथ सीखना
(स) परीक्षा की तैयारी (द) केवल मनोरंजन।
❑ **उत्तर**—(ब)

2. खेल किस प्रकार की गतिविधि है?
(अ) बाध्यकारी (ब) स्वाभाविक
(स) कृत्रिम (द) औपचारिक। ❑ **उत्तर**—(ब)

3. शारीरिक विकास के लिए कौन-सा खेल उपयुक्त है?
(अ) कल्पनात्मक खेल (ब) दौड़ना-कूदना
(स) पजल (द) कहानी सुनना।
❑ **उत्तर**—(ब)

4. कल्पनात्मक खेल से क्या विकसित होता है?
(अ) शक्ति (ब) सृजनात्मकता
(स) अनुशासन (द) स्मृति। ❑ **उत्तर**—(ब)

5. सामाजिक खेल का प्रमुख लाभ है—
(अ) एकांत (ब) सहयोग
(स) प्रतिस्पर्धा मात्र (द) निष्क्रियता। ❑ **उत्तर**—(ब)

6. नियमों पर आधारित खेल कहलाते हैं–
(अ) स्वतंत्र खेल (ब) संरचित खेल
(स) कल्पनात्मक खेल (द) रचनात्मक खेल।
❑ **उत्तर**—(ब)

7. स्वतंत्र खेल का मुख्य लाभ है?
(अ) नियम पालन (ब) आत्म-अभिव्यक्ति
(स) अनुशासन (द) परीक्षा तैयारी। ❑ **उत्तर**—(ब)

8. समूह खेलों से क्या विकसित होता है?
(अ) सामाजिक कौशल (ब) केवल शारीरिक कौशल
(स) केवल भाषा (द) केवल बुद्धि।
❑ **उत्तर**—(अ)

9. खेल के दौरान मतभेद किससे सुलझते हैं?
(अ) दण्ड से (ब) संवाद से
(स) उपेक्षा से (द) बल से। ❑ **उत्तर**—(ब)

10. खेलों के नियमों का पालन सिखाता है—
(अ) अव्यवस्था (ब) अनुशासन
(स) भय (द) निष्क्रियता। ❑ **उत्तर**—(ब)

11. समूह गतिकी का अर्थ है—
(अ) अकेले खेलना (ब) समूह में अंत:क्रिया
(स) केवल जीतना (द) केवल हारना।
❑ **उत्तर**—(ब)

12. खेल बच्चों में किस गुण का विकास करता है?
(अ) असहिष्णुता (ब) सहनशीलता
(स) भय (द) उदासीनता। ❑ **उत्तर**—(ब)

13. खेल के माध्यम से भाषा विकास कैसे होता है?
(अ) संवाद द्वारा (ब) मौन द्वारा
(स) लेखन द्वारा (द) अनुशासन द्वारा।
❑ **उत्तर**—(अ)

14. खेल संघर्ष समाधान में सहायक होता है क्योंकि—
(अ) बच्चे नियम सीखते हैं
(ब) बच्चे बातचीत करना सीखते हैं
(स) बच्चे अकेले रहते हैं
(द) बच्चे हार स्वीकार नहीं करते। ❑ **उत्तर**—(ब)

15. नेतृत्व का विकास किससे होता है?
(अ) व्यक्तिगत खेल (ब) समूह खेल
(स) मौन गतिविधि (द) लिखित कार्य।
❑ **उत्तर**—(ब)

इकाई-तीन

सीखने की प्रक्रिया

[Process of Learning]

6

सीखने के सन्दर्भ में

[CONCEPT FORMATION]

सीखने के कारक (घर या परिवार)

घर, कुटुम्ब अथवा परिवार मानव समाज की प्राचीनतम एवं आधारभूत इकाई एक ऐसा समूह है जिसमें बूढ़े, जवान, पति-पत्नी तथा उनके बच्चे होते हैं। ये सब एक-दूसरे से माता-पिता, भाई-बहन तथा भाई-भाई अथवा किसी अन्य सीधे सम्बन्ध से सम्बन्धित होते हैं। कुछ प्राचीन समाजों में नौकरों को भी परिवार का ही सदस्य समझ लिया जाता है। इसलिए परिवार के अंग्रेजी शब्द Family की उत्पत्ति 'Famulus' शब्द से मानी जाती है, जिसका अर्थ है—नौकर (Servant)। इस प्रकार परिवार एक छोटा-सा सामाजिक वर्ग है जो सामान्यत: माता-पिता तथा एक अथवा एक-से अधिक बालकों द्वारा संगठित होता है। यह परिवार का सबसे सरल रूप है। इसका जटिल रूप भारत के कुछ संयुक्त परिवारों में देखा जाता है जिसमें माता-पिता तथा उनके बालकों के अतिरिक्त चाचा-चाची, ताऊ-ताई तथा दादा (बाबा)-दादी सभी लोग साथ रहते हैं।

परिवार की परिभाषा

(Definition of Family)

यहाँ परिवार के अर्थ को सुस्पष्ट करने के लिए कुछ परिभाषाएँ नीचे दे रहे हैं—

मैकाइवर व **पेज** के अनुसार—"परिवार उस समूह का नाम है जिसमें स्त्री- पुरुष का यौन सम्बन्ध पर्याप्त निश्चित हो और इनका साथ इतनी देर तक रहे, जिससे सन्तान उत्पन्न हो जाये और पालन-पोषण भी किया जाये।"

क्लेयर के अनुसार—"परिवार से हम सम्बन्धों की वह व्यवस्था समझते हैं, जो माता-पिता और उसकी सन्तानों के बीच में पायी जाती है।"

बरगैस और **लॉक** के विचार—"परिवार ऐसे व्यक्तियों का समूह है जो विवाह, या अपनाये गये रिश्तों में बँधकर एक घर का निर्माण करते हैं। पति-पत्नी, माता-पिता, लड़का-लड़की, भाई-बहन आदि की सम्बन्धित सामाजिक भूमिका द्वारा उनमें परस्पर सम्बन्ध स्थापित होता है और इस प्रकार वे सामान्य संस्कृति का निर्माण एवं उनकी व्यवस्था करते हैं।"

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि परिवार अन्तर्क्रियाशील व्यक्तियों का समूह है। उनमें से प्रत्येक व्यक्ति की निश्चित भूमिका और उसका निश्चित स्तर है। यह समूह सुसंगठित होता है और इसका अपना एक व्यक्तित्व होता है। प्रेम, सहयोग, सहानुभूति और मित्रता परिवार के आधार पर होते हैं।

घर या परिवार—शिक्षा के साधन के रूप में

(Home or Family : As an Agency of Education)

पारम्परिक दृष्टि से घर या परिवार को शिक्षा के अनौपचारिक एवं सक्रिय साधन के रूप में देखा गया है। परन्तु समय के साथ इसके स्वरूप तथा कार्यों में भी बदलाव आया। **ऑगबर्न** व **निमकॉफ** (Ogburn & Nimcoff) के अनुसार, "पहले परिवार के निम्न कार्य थे—

परिवार के कार्य

ऑगबर्न व **निमकॉफ** के अनुसार निम्न कार्य हैं—

(1) प्रेम सम्बन्धी। (2) आर्थिक।
(3) शैक्षिक। (4) रक्षा सम्बन्धी।
(5) मनोरंजन सम्बन्धी। (6) परिवार की प्रतिष्ठा।
(7) धर्म की स्थिति।

शिक्षा के साधन के रूप में परिवार का दोहरा दायित्व है। प्रथम, व्यक्ति के प्रति तथा द्वितीय, समाज के प्रति। व्यक्ति के प्रति उसका प्रमुख दायित्व, बच्चे का सामाजीकरण करना है। साथ ही उसके विकास तथा संरक्षण के लिए कार्य करना है। समाज के अंग के रूप में परिवार अपने सदस्यों के लिए शिक्षा की माँग करता है। इसके लिए वह विद्यालयों आदि संस्थाओं की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

बच्चे के जन्म से पहले ही उसकी शिक्षा प्रारम्भ हो जाती है। इस प्रकार परिवार का प्रमुख कार्य भावी जीवन की आधारशिला का निर्माण करना है। अत: पारिवारिक शिक्षा के कार्य बहु-आयामी होते हैं जिनका विवेचन इस प्रकार है—

(1) सीखने का प्रथम स्थान (Primary Place of Learning)—घर या परिवार प्रथम स्थान है, जहाँ बालक बहुत-सी बातें सीखता है। **रेमाण्ट** (Raymont) के शब्दों में, "सामान्य रूप से घर ही वह स्थान है, जहाँ बालक अपनी माँ से चलना, बोलना, मैं और तुम में अन्तर करना और अपने चारों ओर की वस्तुओं के सभी गुणों को सीखता है।"

(2) नैतिक व सामाजिक प्रशिक्षण (Moral and Social Training)—परिवार नैतिक और सामाजिक प्रशिक्षण का सबसे मुख्य स्थान है । पहले बच्चा भाषा सीखता है । फिर वह भाषा के माध्यम से नैतिक और सामाजिक नियमों को सीखता है । परिवार के ढंगों, व्यवहारों और परम्पराओं को अपनाता है । बड़ा होने के साथ वह सामाजिक प्रशिक्षण प्राप्त करता है ।

(3) दूसरों से अनुकूलन (Adjustment with Others)—बालक घर में ही दूसरों से अनुकूलन का पहला पाठ सीखता है । वह परिवार के विभिन्न सदस्यों को एक-दूसरे से मेल रखते हुए देखता है ।

(4) मूल्यों व आदतों का विकास (Cultivation of Values and Ideals)—घर का प्रभाव बालकों में कुछ मूल्यों और आदतों का विकास करता है । अपने पिता से न्याय, कर्तव्यपरायणता, माता से प्रेम और भाई-बहिनों से भ्रातृत्व-भावना सीखता है । घर से ही बालक में सहायता, सहानुभूति, क्षमा, सच्चाई, परिश्रम और उदारता के आदर्शों को देखता है ।

(5) सामाजिक व्यवहार का आधार (Basis of Social Behaviour)—बालक परिवार के सामाजिक जीवन में जो भी अनुभव प्राप्त करता है वह सामाजिक व्यवहार का आधार होता है ।

(6) वैयक्तिकता का विकास (Development of Individuality)—बालक की वैयक्तिकता का विकास घर में होता है । माता का दृष्टिकोण उसके प्रति पूर्णत: वैयक्तिक होता है क्योंकि वह चाहती हैं कि उसका पुत्र सब बातों में अन्य व्यक्तियों से श्रेष्ठ हो । परिवार में ही बालक को अपनी वैयक्तिकता का पूर्ण विकास करने का अवसर प्राप्त होता है ।

(7) मानसिक व भावात्मक प्रवृत्ति का निर्माण (Formation of Mental and Emotional Disposition)—घर का वातावरण बालक में मानसिक और भावात्मक प्रवृत्ति का निर्माण करता है । जैसे जिस बच्चे का पालन पोषण चित्रकार के घर हुआ होता है उसमें चित्रकारी के प्रति मानसिक और भावात्मक प्रवृत्ति होना आवश्यक है ।

(8) आदतों का निर्माण (Formation of Habits)—बालक में अच्छी या बुरी आदतें घर में ही पड़ती हैं । वह अपने परिवार के सदस्यों की कुछ आदतों को देखता है और अनजाने ही उन्हें ग्रहण करता है ।

(9) पसन्दों एवं रुचियों का विकास (Development of Taste and Interest)—परिवार में ही बालक की पसन्दों और रुचियों का विकास होता है । यदि वह अपने घर में सदैव सुन्दर और आकर्षक वस्तुएँ देखता है तो निश्चित रूप से ऐसी वस्तुओं में रुचि होगी । वह परिवार के अनुसार ही वस्तुओं को पसन्द और नापसन्द करता है ।

(10) प्रेम की शिक्षा (Education of Love)—माँ द्वारा ही बालक को प्रेम की शिक्षा मिलती है । माँ के अलावा परिवार के दूसरे सदस्य भी बालक को प्रेम की शिक्षा देते हैं जिससे वह परिवार, समाज, देश तथा विश्व से प्रेम करता है । **राम** और **शर्मा** का कथन है—"माता-पिता द्वारा बच्चे को दिया जाने वाला आराम, नि:स्वार्थ प्रेम का सर्वोत्तम जीवित उदाहरण प्रस्तुत करता है ।"

(11) सहयोग की शिक्षा (Education of Co-operation)—जब बालक बड़ा होकर समझदार बनता है तब अपने परिवार के सदस्यों को एक-दूसरे का सहयोग करना देखता है । माँ घर का काम-काज करती है, पिता धन कमाकर लाते हैं, बड़े भाई-बहन किसी-न-किसी काम में घर के सदस्यों की सहायता करते हैं । इससे बालक में सहयोग का गुण विकसित होता है ।

बोसांके (Bosanquet) ने ठीक ही कहा है—"परिवार ही वह स्थान है, जहाँ प्रत्येक नई पीढ़ी नागरिकता का नया पाठ सीखती है कि कोई भी मनुष्य बिना सहयोग के जीवित नहीं रह सकता है ।"

(12) नि:स्वार्थता की शिक्षा (Education of Selflessness)—बालक सबसे पहले अपने माता-पिता की नि:स्वार्थता को प्रति क्षण देखता है । वे विभिन्न मुश्किलें सहकर अपने बच्चे को आराम देते हैं । इससे अच्छा नि:स्वार्थता का उदाहरण और क्या हो सकता है । **बोगार्डस** (E. S. Bogardus) ने ठीक ही लिखा है—"परिवार का आधार.....आत्म बलिदान का सिद्धान्त है । आत्म-बलिदान के ही कारण इसकी महान् शक्ति है और इसलिए यह बालकों के सामाजिक प्रशिक्षण का केन्द्र है ।"

(13) परोपकार की शिक्षा (Education of Philanthropy)—परिवार में रोगी या वृद्ध सदस्य की परिवार का प्रत्येक सदस्य मदद करता है । उसकी देखभाल परिवार के अन्य सदस्य करते हैं फलत: बालक में परोपकार की भावना जागृत हो जाती है । इस सम्बन्ध में **अल्फ्रेड जे. शॉ** (Alfred J. Shaw) ने लिखा है—

"परोपकार की भावना का विकास सबसे पहले परिवार में होता है जहाँ बालक परिवार के रोगी, वृद्ध और छोटे सदस्य की सहायता और सेवा को न केवल करते हुए देखते हैं, वरन् उन्हें अक्सर ऐसा करना भी पड़ता है ।"

(14) सहिष्णुता की शिक्षा (Education for Tolerance)—प्रत्येक परिवार में विभिन्न प्रकार के व्यक्ति होते हैं । किसी को जल्दी क्रोध आ जाता है, कोई भावुक होता है तो कोई उग्र स्वभाव का होता है । परिवार में कुछ व्यक्ति शान्त स्वभाव के होते हैं । इनमें सहन शक्ति या सहिष्णुता भी होती है जो अपने प्रयासों से परिवार में शान्ति बनाए रखते हैं ।

(15) कर्त्तव्य पालन की शिक्षा (Education for Performance of Duty)—परिवार के बड़े सदस्य अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हैं, माता-पिता हर काम से बच्चों की आवश्यकताओं की पूर्ति करना अपना परम कर्त्तव्य समझते हैं । बड़े भाई-बहिन अपने से छोटों के प्रति अपने कुछ कर्त्तव्य समझते हैं और उनको करते हैं । बालक अपने परिवार से कर्त्तव्य पालन की भावना देखता और सीखता है ।

(16) आज्ञापालन व अनुशासन की शिक्षा (Education for Obedience and Discipline)—प्रत्येक परिवार में एक मुखिया होता है जिसकी आज्ञा प्रत्येक सदस्य को माननी पड़ती है । अत: बालक भी आज्ञापालन और अनुशासन के गुणों को ग्रहण करता है । **काम्टे** (Auguste Comte) का कथन है—"आज्ञापालन और शासन दोनों रूपों में पारिवारिक जीवन सामाजिक जीवन का सदैव शाश्वत विद्यालय रहेगा ।"

(17) व्यावहारिक शिक्षा (Practical Education)—परिवार में रहकर ही बालक विभिन्न प्रकार की व्यावहारिक शिक्षा सीखता है; जैसे—पड़ौसी के साथ कैसा व्यवहार किया जाये ? अतिथियों का

सत्कार किस प्रकार करना चाहिए ? किस प्रकार उठना, बैठना और खड़े होना चाहिए ? आदि ।

(18) व्यक्तित्व का विकास (Development of Personality)—इस प्रकार हम देखते हैं कि परिवार बच्चे के व्यक्तित्व के सर्वोन्मुखी विकास—शारीरिक, बौद्धिक, सौन्दर्यात्मक, सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक, आध्यात्मिक, व्यावसायिक आदि में सहायता प्रदान करता है ।

सीखने के कारक (विद्यालय)

स्कूल बच्चों के लिए सीखने का दूसरा मुख्य संदर्भ है जहाँ औपचारिक (Formal) और व्यवस्थित (Structured) शिक्षा प्राप्त होती है। यहाँ बच्चे न केवल ज्ञान प्राप्त करते हैं, बल्कि सामाजिक और बौद्धिक विकास भी करते हैं। स्कूल में सीखने (learing) के संदर्भ (context) को समझना बहुत महत्वपूर्ण है—

1. संरचित पाठ्यक्रम (Structured Curriculum)—स्कूल में बच्चों को विभिन्न विषयों के माध्यम से व्यवस्थित ज्ञान (organized knowledge) और (concepts) सिखाए जाते हैं।

2. शिक्षक के साथ संवाद (Teacher Interacton)—शिक्षक बच्चों को नए विचार समझाते हैं और उनकी शंकाओं का समाधान करते हैं

3. सहपाठी से सीखना (Peer Learning)—समूह गतिविधियों और चर्चा (discussion) के माध्यम से बच्चे आपस में ज्ञान (knowledge share) करते हैं।

4. व्यवहारिक अनुभव (Practical Exposure)—प्रयोगशाला परियोजना (projects) और क्षेत्र भ्रमण (field visits) बच्चों को वास्तविक में समझने में मदद करते हैं।

स्कूल का वातावरण बच्चे के सोचने, समझने और समस्या समाधान कौशल (problem-solving skills) को विकसित करता है। यह घर (home) से मिली प्रारम्भिक जानकारी को और गहराई देता है।

विद्यालय का महत्व व आवश्यकता
(Importance and Necessity of School)

समाज में विद्यालय के स्थान, महत्व और आवश्यकताओं पर प्रकाश डालते हुए **एस. बालकृष्ण जोशी** ने लिखा है—"किसी भी राष्ट्र की प्रगति का निर्माण विधान- सभाओं, न्यायालयों और फैक्ट्रियों में नहीं, वरन् विद्यालयों में होता है ।"

सभ्यता के प्रारम्भ में परिवार, समुदाय और धार्मिक संस्थाएँ ही शिक्षा की मुख्य संस्थाएँ थीं । लेकिन जैसे-जैसे मनुष्य ने ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में विकास किया वैसे- वैसे उसे ज्ञान-विज्ञान को सुरक्षित रखने और उससे आगे आने वाली पीढ़ी को अवगत कराने के लिए विद्यालयों की स्थापना करनी पड़ी । आज तो ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में इतना अधिक विकास हुआ कि उस सबकी शिक्षा के लिए विद्यालयों की बहुत आवश्यकता है । बिना विद्यालयों की सहायता के हम बच्चों को आज के समाज में समायोजन करने लायक नहीं बना सकते ।

विद्यालय का निर्माण कोई समाज या राज्य अपने बच्चों एवं युवकों की शिक्षा की व्यवस्था के लिए ही करता है । विद्यालयों का एकमात्र उत्तरदायित्व समाज या राज्य द्वारा निश्चित शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति करना होता है, बच्चों के व्यवहार में वांछित परिवर्तन करना पड़ता है और इसके लिए वे कई कार्य करते हैं ।

विद्यालयों का महत्व निम्न कारणों से है—

(1) जीवन की जटिलता (Complexity of Life)—आज का जीवन प्राचीनकाल के जीवन के समान सरल और सुखमय नहीं है । उस समय मनुष्य के पास अपनी सब आवश्यकताओं को स्वयं पूर्ण करने और अपने बच्चों की शिक्षा की स्वयं देखभाल करने के लिए समय था । मनुष्य को अपने कार्यों से इतनी फुर्सत नहीं मिलती कि वह अपने बच्चों की देखभाल कर सके । इसलिए उसने यह कार्य विद्यालय को सौंप दिया है ।

(2) घर व विश्व को जोड़ने वाली कड़ी (Connecting Link between the home and the world)—बालक की शिक्षा में घर का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है । घर में रहकर वह अनुशासन, सेवा, सहानुभूति, नि:स्वार्थता आदि गुणों को सीखता है । घर की चहारदीवारी में बँधे रहने के कारण ये गुण अपने परिवार के व्यक्तियों तक ही सीमित रहते हैं । विद्यालय में विभिन्न वर्गों और सम्प्रदायों के बालकों के सम्पर्क में आकर उसका दृष्टिकोण विस्तृत होता है । इस प्रकार विद्यालय घर तथा बाह्य जीवन को जोड़ने वाली कड़ी है । **रेमण्ट** का कथन है—"विद्यालय बाह्य जीवन के बीच की अर्द्ध-पारिवारिक कड़ी है जो बालक की उस समय प्रतीक्षा करता है, जब वह अपने माता-पिता की छत्रछाया को छोड़ता है ।"

(3) विशाल सांस्कृतिक विरासत (Extensive Cultural Heritage)—आज की सांस्कृतिक विरासत बहुत विशाल हो गयी है । इसमें अनेक प्रकार के ज्ञान, कुशलताओं और कार्य करने की विधियों का समावेश हो गया है । ऐसी विरासत की शिक्षा देने में व्यक्ति अपने को असमर्थ पाते हैं । अत: उन्होंने यह कार्य विद्यालय को सौंप दिया ।

(4) विशिष्ट वातावरण की अवस्था (Provision of Special Environment)—विद्यालय छात्रों को एक विशिष्ट वातावरण प्रदान करता है । यह वातावरण शुद्ध, सरल और सुव्यवस्थित होता है । इससे छात्रों की प्रगति पर स्वस्थ और शिक्षाप्रद प्रभाव पड़ता है । ऐसा वातावरण शिक्षा का और कोई साधन नहीं प्रदान कर सकता है ।

(5) आदर्शों व विचारधाराओं का प्रसार (Propagation of Ideals and Ideologies)—राज्य के आदर्शों और विचारधाराओं को फैलाने के लिए विद्यालय को अति महत्वपूर्ण साधन माना गया है । इसलिए, सभी प्रकार के राज्यों में विद्यालय का गौरवपूर्ण स्थान है ।

(6) व्यक्तित्व का सामंस्यपूर्ण विकास (Harmonious Development of Personality)—विद्यालय का एक निश्चित उद्देश्य और पूर्व नियोजित कार्यक्रम होता है। परिणामस्वरूप इसका बालक पर व्यवस्थित रूप में प्रभाव पड़ता है और उसके व्यक्तित्व का सामंजस्यपूर्ण विकास होता है ।

(7) बहुमुखी सांस्कृतिक चेतना का विकास (Development of Cultural Pluralism)—विद्यालय में विभिन्न परिवारों, समुदायों और संस्कृतियों से छात्र आते हैं । परस्पर सम्पर्क के कारण उनमें एक-दूसरे के सांस्कृतिक गुण आ जाते हैं । अत: विद्यालयों को छात्रों

में बहुमुखी संस्कृति का विकास करने का महत्वपूर्ण साधन समझा जाता है ।

(8) समाज की निरन्तरता व विकास (Perpetuation and Development of Society)—'विद्यालय' एक प्रमुख सामाजिक संस्था है । शिक्षा की प्रक्रिया सामाजिक होने के कारण विद्यालय सामुदायिक जीवन का वह स्वरूप है, जिसमें समाज की निरन्तरता और विकास के लिए सभी प्रभावपूर्ण साधन केन्द्रित होते हैं । विद्यालय के इसी महत्व को **टी. पी. नन** ने इस प्रकार बताया है—"विद्यालय को समस्त संसार का नहीं वरन् समस्त मानव-समाज का आदर्श लघु रूप होना चाहिए ।"

(9) शिक्षित नागरिकों का निर्माण (Creation of Educated Citizens)—विद्यालय ही एकमात्र वह साधन है जिसके द्वारा शिक्षित नागरिकों का निर्माण किया जाता है । यदि एक देश के समस्त बालकों को निश्चित आयु तक निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा दी जाती है, तो वे स्थायी रूप से साक्षर हो जाते हैं । साक्षर होने के साथ-साथ उनमें धैर्य, सहयोग, उत्तरदायित्व आदि गुणों का विकास होता है । इस प्रकार वह अच्छे नागरिक साबित हो सकते हैं ।

(10) घर की अपेक्षा शिक्षा का उत्तम स्थान (A Better Place of Education than Home)—विद्यालय घर की अपेक्षा शिक्षा का उत्तम स्थान है । कारण यह है कि विद्यालय में विभिन्न आदतों, रुचियों और दृष्टिकोणों के बालक आते हैं । अतः परस्पर सम्पर्क के कारण बालक उन बातों को सीखते हैं, जिन्हें वे घर की चहारदीवारी के अन्दर नहीं सीख सकते हैं । यदि बालकों को संसार के ढंगों से परिचित कराना है, यदि उनको सामाजिक शिष्टाचार और सहानुभूति सिखानी है, निष्पक्षता और सहयोग के महत्व को बताना है तो उनको घर से बाहर विद्यालय में भेजना अनिवार्य है ।

उपर्युक्त स्पष्टीकरण से विद्यालय के स्थान, महत्व और आवश्यकता को सरलतापूर्वक समझा जा सकता है । विद्यालय व्यक्ति और समाज दोनों के लिए उपयोगी है ।

टी. पी. नन ने ठीक ही लिखा है—"एक राष्ट्र के विद्यालय उसके जीवन के अंग हैं, जिनका विशेष कार्य है—उसकी आध्यात्मिक शक्ति को दृढ़ बनाना, उसकी ऐतिहासिक निरन्तरता को बनाये रखना, उसकी भूतकाल की सफलताओं को सुरक्षित रखना और उसके भविष्य की गारण्टी देना ।"

वर्तमान विद्यालय के कार्य
(Functions of Present Day School)

स्वतन्त्रता के बाद भारत के वर्तमान विद्यालयों के कार्यों में अत्यधिक परिवर्तन आ गया है । किसी व्यक्ति को जिस समुदाय का वह सदस्य है वहाँ स्वतन्त्रता एवं प्रभावपूर्ण ढंग से कार्य करने का अवसर दिया जाना चाहिए । वर्तमान विद्यालय बच्चों की मानसिक, शारीरिक, सौन्दर्यात्मक, आध्यात्मिक और मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रयास करता है । **थियोडोर रूजवेल्ट** ने लिखा है—"हमारे राष्ट्र के लिए जो भी कार्य किया गया या जो भी कार्य किया जा सकता है उसमें सर्वश्रेष्ठ कार्य उन बच्चों के शरीर, मस्तिष्क और सबसे अधिक चरित्र को शिक्षित करना है तथा उन्हें आध्यात्मिक और चारित्रिक प्रशिक्षण देना है जिन्हें आने वाले कुछ वर्षों में राष्ट्र के भाग्य का निर्णायक होना है ।"

विद्यालय को परिवार की 'लम्बी बाँह' कहा गया है । अध्यापक, मित्र, दार्शनिक और मार्गदर्शक का कार्य करता है, बच्चे के लिए पर्याप्त अवसर प्रस्तुत किये जाते हैं । नवीन शिक्षा प्रणाली; जैसे—डाल्टन विधि, योजना विधि, ह्यूरिस्टिक विधि, माण्टेसरी विधि आदि ने हमारी शिक्षण पद्धति में प्रभावी परिवर्तन कर दिये हैं । संक्षेप में विद्यालय के कार्यों का वर्णन निम्न प्रकार किया जा सकता है—

(1) व्यक्ति का पूर्ण विकास।
(2) संस्कृति का संचारण एवं संवर्द्धन।
(3) सामाजिक कौशल का विकास।
(4) उच्चतर मूल्यों का निर्माण।
(5) स्कूल के पश्चात् अनुकूलन।
(6) व्यावसायिक प्रशिक्षण प्रदान करना।
(7) राष्ट्रीय एकता का विकास करना।
(8) अन्तर्राष्ट्रीयता को विकसित करना।
(9) नेतृत्व के लिए प्रशिक्षण।
(10) माता-पिता की शिक्षा।
(11) शिक्षा के विभिन्न साधनों में ताल-मेल स्थापित करना।

सीखने के कारक (पर्यावरण)

पर्यावरण (Environment) बच्चों के सीखने का एक महत्वपूर्ण संदर्भ है। यह केवल प्राकृतिक तत्वों तक सीमित नहीं है, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक पहलुओं को भी शामिल करता है—

1. प्राकृतिक वातावरण (Natural Environment)—बच्चे पेड़- पौधे, जानवर, मौसम और प्राकृतिक घटनाओं को देखकर नए विचार औ।र अवधारणाएँ सीखते हैं।

2. सामाजिक वातावरण (Social Environment)—परिवार, पड़ोसी, दोस्त और समाज से सम्पर्क बच्चे के सामाजिक और भावनात्मक विकास को प्रभावित करता है।

3. सांस्कृतिक अनुभव (Cultural Exposure)—त्यौहार, परम्पराएँ और लोक कथाएँ बच्चों के सोचने और समझने के तरीके को प्रभावित करती है।

4. अनुभव आधारित सीखना (Experiential Learning)—वातावरण में प्रत्यक्ष अनुभव, खेल और गतिविधियाँ बच्चों को वास्तविक जीवन से जोड़ने में मदद करते हैं।

इस प्रकार पर्यावरण बच्चों को प्राकृतिक और वास्तविक अनुभवों के माध्यम से मजबूत बनाता है। यह घर और स्कूल में मिली शिक्षा को व्यापक और अर्थपूर्ण बनाता है।

अवधारणा निर्माण
(Concept Formation)

बच्चों में अवधारणा निर्माण की प्रक्रिया तब अधिक प्रभावी होती है जब शिक्षण उनकी **पहले से मौजूद धारणाओं, अनुभवों और विचारों** पर आधारित होता है। बच्चे विद्यालय में बिल्कुल खाली मन लेकर नहीं आते, बल्कि वे अपने घर, समाज और पर्यावरण से अनेक अनुभव और धारणाएँ लेकर आते हैं। यदि शिक्षक

इन पुराने ज्ञान को पहचानकर नए ज्ञान से जोड़ते हैं, तो सीखना स्वाभाविक, अर्थपूर्ण और स्थायी बनता है।

1. Prior Knowledge का महत्व—बच्चों के पूर्व अनुभव और जानकारी नई अवधारणओं की नींव का काम करते हैं। उदाहरण के लिए, बच्चा पहले से जानता है कि धूप में गर्मी होती है, इसी अनुभव से ताप और ऊर्जा के concept को समझाया जा सकता है।

2. Connecting New with Known—शिक्षक नए concept को बच्चों को जानी-पहचानी परिस्थितियों से जोड़ते हैं, जिससे abstract ideas भी सरल बन जाते हैं।

3. Encouraging Expression of Ideas—बच्चों को अपने विचार बोलने, चित्र बनाने या गतिविधियों के माध्यम से व्यक्त करने का अवसर देना चाहिए। इससे शिक्षक को उनकी सोच समझने में मदद मिलती है।

4. Addressing Misconceptions—कई बार बच्चों की धारणाएँ अधूरी या गलत हो सकती हैं। शिक्षक उन्हें नकारने के बजाए discussion और अनुभव के माध्यम से सही दिशा में सुधार करते हैं।

5. Use of Examples and Activities—कहानियाँ, प्रयोग, खेल और दैनिक जीवन के उदाहरण बच्चों की existing ideas को मजबूत करते हैं और नए concepts को स्पष्ट करते हैं।

6. Active Participation—जब बच्चे अपनी जानकारी का उपयोग करके सीखते हैं, तो वे सीखने की प्रक्रिया में सक्रिय भागीदार बनते हैं।

7. Confidence Building—बच्चों के विचारों को महत्व देने से उनमें आत्मविश्वास बढ़ता है और वे सीखने के लिए उत्साहित रहतें हैं।

इस प्रकार, बच्चों की existing ideas पर आधारित शिक्षण Concept Formation को सरल, प्रभावी और दीर्घकालिक बनाता है। यह दृष्टिकोण बच्चों को केवल जानकारी प्राप्त करने वाला नहीं, बल्कि **सोचने और समझने वाला सक्रिय learner** बनाता है।

Making Connnections का अर्थ है, सीखने की प्रक्रिया में **नए ज्ञान, अनुभवों और वास्तविक जीवन की परिस्थितियों से जोड़ना।** Concept Formation तभी प्रभावी होती है जब बच्चा यह समझ पाता है कि वह जो सीख रहा है, उसका उसके जीवन से क्या सम्बन्ध है। जब शिक्षक सीखने को बच्चों के अनुभवों और दैनिक जीवन से जोड़ते हैं, तो अवधारणाएँ केवल शब्दों तक सीमित नहीं रहतीं, बल्कि अर्थपूर्ण बन जाती हैं।

1. पूर्व ज्ञान से सम्बन्ध (Connecting with Prior Knowledge)—नए concept को सिखाते समय शिक्षक बच्चों से पूछते हैं कि वे इसके बारे में पहले क्या जानते हैं। इससे सीखने की नींव मजबूत होती है।

2. दैनिक जीवन से जोड़ना (Linking with Daily Life)—उदाहरणों को घर, बाजार, खेल, मौसम और सामाजिक अनुभवों से जोड़ने पर बच्चे आसानी से concept समझ पाते हैं।

3. विषयों के बीच सम्बन्ध (Interdisciplinary Connections)—गणित को विज्ञान, भाषा को सामाजिक अध्ययन या कला से जोड़कर पढ़ाने से बच्चे की समझ व्यापक होती है।

4. उपमा और उदारण (Use of Analogies and Examples)—समानताओं और तुलना के माध्यम से abstract ideas को सरल बनाया जाता है।

5. दृश्य और अनुभव आधारित सम्बन्ध (Visual and Experience Connections)—चित्र, मॉडल, प्रयोग और गतिविधियाँ concepts को स्पष्ट करने में सहायक होती हैं।

6. भावानात्मक जुड़ाव (Emotional Connections)—कहानियाँ, अनुभव साझा करना और समूह चर्चा बच्चों का भावनात्मक रूप से सीखने से जोड़ते हैं।

7. सामाजिक सम्पर्क (Social Connections)—peer discussion और collaborative activities से बच्चे एक-दूसरे के विचारों से सीखते हैं।

Making Connections के माध्यम Concept Formation **गहरी, स्थायी और अर्थपूर्ण** बनती है। यह बच्चों को केवल याद करने के बजाए **समझने, लागू करने और विश्लेषण करने** की क्षमता विकसित करने में मदद करती है। इस प्रकार, सीखना एक सतत और जीवन से जुड़ी प्रक्रिया बन जाता है।

Meaning Making का अर्थ है, सीखने की प्रक्रिया में बच्चों को यह समझने में मदद करता है कि वे जो सीख रहे हैं उसका **अर्थ, उपयोग और महत्व** क्या है। Concept Formation केवल तथ्यों को याद करने से नहीं होती, बल्कि तब होती है जब बच्चा नए ज्ञान को अपने अनुभवों, विचारों और संदर्भों से जोड़कर उसका अर्थ निर्मित करता है। Meaning Making बच्चों को passive learner से active thinker बनाता है।

1. रटने से आगे समझ (Understanding beyond Memorization)— बच्चे किसी concept का अर्थ समझते हैं, तब वे उसे लम्बे समय तक याद रख पाते हैं।

2. अनुभव और अवधारणा का सम्बन्ध (Linking Experience with Concepts)—दैनिक जीवन के अनुभवों को कक्षा के ज्ञान से जोड़ने पर concepts अधिक स्पष्ट होते हैं।

3. प्रश्न और जिज्ञासा (Questioning and Inquiry)—बच्चों को 'क्यों' और 'क्या होगा' जैसे प्रश्न पूछने के लिए प्रोत्साहित करना Meaning Making को बढ़ाता है।

4. संवाद और चर्चा (Dialogue and Discussion)—कक्षा में बातचीत और विचार-विमर्श से बच्चे अपने और दूसरों के विचारों से अर्थ निर्मित करते हैं।

5. चिंतन (Reflection)—सीखने के बाद बच्चों को सोचने का अवसर देना कि उन्होंने क्या सीखा और उसका क्या अर्थ है।

6. कहानी और संदर्भ (Use of Stories and Contexts)—कहानियाँ और जीवन से जुड़े संदर्भ abstract concepts को meaningful बनाते हैं।

7. सामाजिक रूप से अर्थ निर्माण (Social Construction of Meaning)—समूह कार्य और सहयोग से बच्चे सामूहिक रूप से ज्ञान का अर्थ समझते हैं।

Meaning Making के माध्यम से Concept Formation **गहरी, स्थायी और व्यक्तिगत** बनती है। यह बच्चों को ज्ञान को

केवल स्वीकार करने वाला नहीं, बल्कि **समझने, व्याख्या करने और नए अर्थ गढ़ने वाला** learner बनाती है। इस प्रकार, सीखना एक जीवंत और सार्थक प्रक्रिया बन जाता है।

सम्बन्ध (Relationships) Concept Formation की प्रक्रिया में अत्यतं महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जब बच्चे विभिन्न विचारों, वस्तुओं, अनुभवों और व्यक्तियों के बीच सम्बन्धों को समझते हैं, तब वे किसी अवधारणा का **समग्र और गहन अर्थ** निर्मित कर पाते हैं। सीखना केवल अलग-अलग तथ्यों को जानना नहीं है, बल्कि उनके बीच के सम्बन्धों को पहचानना और समझना है।

1. अवधारणाओं के बीच सम्बन्ध (Concept-to-Concept Relationships)—एक concept को दूसरे concept से जोड़ने पर बच्चों की समझ विस्तृत होती है, जैसे कारण-परिणाम, समानता-भिन्नता और क्रमबद्धता।

2. अंश-समग्र सम्बन्ध (Part-Whole Relationship)—बच्चे समझते हैं कि छोटे भाग मिलकर एक बड़े concept का निर्माण करते हैं, जैसे परिवार समाज का हिस्सा है।

3. कारण और परिणाम (Cause and Effect)—किसी घटना के पीछे कारण और उसके प्रभाव को समझना concept clarity को बढ़ाता है।

4. सामाजिक सम्बन्ध (Social Relationhip)—शिक्षक-छात्र और छात्र-छात्र के सम्बन्ध सुरक्षित और सहयोगी learning वातावरण बनाते हैं, जिससे सीखना सहज होता है।

5. भावनात्मक सम्बन्ध (Emotional Relationship)—जब बच्चा शिक्षक और साथियों से भावात्मक रूप से जुड़ा होता है, तो वह निडर होकर सीखने की प्रक्रिया में भाग लेता है।

6. संदर्भगत सम्बन्ध (Contextual Relationship)—ज्ञान को समय, स्थान और परिस्थिति से जोड़ने पर उसका अर्थ स्पष्ट होता है।

7. भाषा और अर्थ का सम्बन्ध (Language and Meaning Relationship)—शब्दों और उनके अर्थ के बीच सम्बन्ध समझने से अवधारणाएँ स्थायी बनती हैं।

इस प्रकार, Relationship के माध्यम Concept Formation **तार्किक, संगठित और अर्थपूर्ण** बनती है। बच्चे तथ्यों को अलग-अलग नहीं देखते, बल्कि उन्हें **आपस में जुड़ा हुआ ज्ञान** मानकर समझते हैं। यही प्रक्रिया बच्चों को गहन समझ, विश्लेषण और अनुप्रयोग की ओर ले जाती है।

बड़ी अवधारणाएँ Big Ideas वे व्यापक और मूलभूत विचार होते हैं जो किसी विषय या ज्ञान-क्षेत्र के **केन्द्र में स्थित होते हैं।** Concept Formation की प्रक्रिया में Big Ideas बच्चों को अलग-अलग तथ्यों और सूचनाओं को एक **सार्थक ढाँचे** में समझने में मदद करती हैं। जब शिक्षण केवल छोटे तथ्यों तक सीमित रहता है तो सीखना बिखरा हुआ होता है; लेकिन Big Ideas पर आधारित शिक्षण से सीखना गहरा, संगठित और दीर्घकालिक बनता है।

1. मूल समझ (Core Understanding)—Big Ideas किसी विषय की मूल भावना को स्पष्ट करती हैं, जैसे "परिवर्तन प्रकृति का नियम है" या "सभी जीव एक-दूसरे पर निर्भर हैं।"

2. अनेक अवधारणाओं को जोड़ना (Connecting Multiple Concepts)—एक Big Ideas कई छोटे concepts को जोड़ती है, जिससे बच्चों को विषय की समग्र समझ मिलती है।

3. रटने में कमी (Reducing Memorization)—बच्चे अलग-अलग तथ्यों को याद करने के बजाए मूल विचार को समझते हैं और तथ्यों को उससे जोड़ते हैं।

4. सीख का स्थानांतरण (Transfer of Learning)—Big Ideas बच्चों को सीखी हुई बातों को नए संदर्भों और वास्तविक जीवन की परिस्थितियों में लागू करने में मदद करती है।

5. गहन सोच को बढ़ावा (Encouraging Deep Thinking)—बच्चे "क्या", "क्यों" और "कैसे" जैसे प्रश्नों के माध्यम से विषय पर गहराई से विचार करते हैं।

6. विषयों के बीच सम्बन्ध (Interdisciplinary Links)—Big Ideas अलग-अलग विषयों को जोड़ती हैं, जैसे विज्ञान, समाजशास्त्र और पर्यावरण अध्ययन।

7. दीर्घकालिक समझ (Long-term Understanding)—बड़े विचार बच्चों के मन में लम्बे समय तक बने रहते हैं और आगे की सीख की नींव बनते हैं।

इस प्रकार Big Ideas के माध्यम से Concept Formation **समग्र, अर्थपूर्ण और स्थायी** बनती है। यह बच्चों को ज्ञान के छोटे टुकड़ों में उलझने के बजाय **बड़े चित्र को देखने और समझने की** क्षमता प्रदान करती है, जिससे वे सशक्त और विचारशील learner बनते हैं।

Graphic Organizers सीखने और Concept Formation को आसान बनाने का एक अत्यंत प्रभावी उपकरण है। ये बच्चों को **विचारों और जानकारी को** visual **रूप में व्यवस्थित करने में** मदद करते हैं। जब बच्चे जानकारी को structure में देखते हैं, तो उन्हें concepts के बीच संबंध, महत्व और क्रमबद्धता स्पष्ट रूप से समझ में आती है। Graphic Organizers abstract और जटिल अवधारणाओं को सरल, सहज और याद रखने योग्य बनातें हैं।

1. दृश्य संरचना (Visual Structure)—Graphic Organizers में शब्द, चित्र और symbols का उपयोग करके जानकारी को स्पष्ट और organized रूप में दिखाया जाता है।

2. अवधारणाओं को जोड़ना (Connecting Concepts)—बच्चों को concepts के बीच relationship पहचानने में मदद मिलती है, जैसे Cause-effect, similarity-difference या hierarchy.

3. जानकारी को सरल बनाना (Simplifying Information)—जटिल विषयों को छोटे हिस्सों में विभाजित करके समझना आसान होता है।

4. समझ में सुधार (Enhancing Understanding)—student information को visual रूप में देखकर उसे better समझते और internalize करते हैं।

5. सक्रिय भागीदारी (Active Engagement)—बच्चे अपने विचारों को map या organizer में जोड़ते हैं, discussion करते हैं और peer learning के माध्यम से सीखते हैं।

6. स्मरण और पुनः स्मरण (Memory and Recall)—visual represenation से concepts लम्बे समय तक याद रहते हैं और exam या applicationमें आसानी होती है।

7. मूल्यांकन उपकरण (Assessment Tool)—शिक्षक graphic organizers के माध्यम से students की understanding और miscon-cepotions पहचान सकते हैं।

Graphic Organizers का उपयोग Concept Formation को structured, interactive और meaningful बनाता है। यह approach बच्चों को passive observer से active, thoughtful और analytical learner में बदल देता है।

Concept Maps सीखने और Concept Formation को स्पष्ट, व्यवस्थित और अर्थपूर्ण बनाने का एक प्रभावी तरीका है। Concept maps बच्चों को यह दिखाते हैं कि **विभिन्न अवधारणओं के बीच कैसे सम्बन्ध और** hierarchy **है।** जब बच्चे concept को visual रूप में देखते हैं, तो वे केवल facts याद नहीं करते बल्कि उन्हें समझते, जोड़ते और लागू करते हैं। यह उपकरण abstract ideas को concrete और structured रूप में प्रस्तुत करता है।

दृश्य संगठन (Visual Organization)—Concept Maps में शब्द, चित्र, arrows और connectors के माध्यम से information को organized रूप में दिखाया जाता है।

सम्बन्ध दिखाना (Showing Relationship)—बच्चे concepts के बीच relationships जैसे cause-affect, part-whole, similarity-difference को identify में दिखाए जाते हैं।

सांगीतिक संरचना (Hierarchical Structure)—मुख्य concepts सबसे ऊपर रखा जाता है और उससे जुड़े sub-concepts नीचे branches में दिखाए जाते हैं।

समझ में सुधार (Enhancing Understanding)—students विभिन्न concepts के बीच connections देखकर उन्हें बेहतर समझते हैं। और internaloize करते हैं।

दीर्घ एवं लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1. अवधारणा निर्माण से आप क्या समझते हैं? घर, विद्यालय एवं परिवेश के संदर्भ में इसके महत्व को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—अवधारणा निर्माण वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से बच्चे अनुभवों के आधार पर वस्तुओं, घटनाओं एवं विचारों को समझते हैं और उनका अर्थ निर्मित करते हैं। घर पहला अधिगम स्थल है जहाँ बच्चे दैनिक अनुभवों से अवधारणाएँ बनाते हैं। विद्यालय संरचित गतिविधियों, संवाद और शिक्षण सामग्री के माध्यम से अवध ारणाओं को स्पष्ट करता है। परिवेश वास्तविक जीवन से जोड़कर सीख को अर्थपूर्ण बनाता है। इन तीनों संदर्भों का समन्वय अवधारणा निर्माण को गहरा और स्थायी बनाता है।

प्रश्न 2. बच्चों में अवधारणा निर्माण की सुगम बनाने के प्रमुख उपायों का वर्णन कीजिए।

उत्तर—अवधारणा निर्माण को सुगम बनाने के लिए शिक्षकों को बच्चों के पूर्ण ज्ञान और अनुभवों पर निर्माण करना चाहिए। नए विचारों को पुराने विचारों से जोड़ना, उदाहरणों के माध्यम से अर्थ-निर्माण करना तथा विभिन्न अवधारणाओं के बीच सम्बन्ध स्थापित करना आवश्यक है। 'बिग आइडियाज' पर ध्यान देने से बच्चों में व्यापक समझ विकसित होती है, जिससे रटंत के स्थान पर सार्थक अधिगम होता है।

प्रश्न 3. ग्राफिक, आयोजकों, कॉन्सेप्ट मैप एवं पंचपदी की भूमिका को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—ग्राफिक आयोजकों एवं कॉन्सेप्ट मैप बच्चों को विचारों को दृश्य रूप में व्यवस्थित करने में सहायता करते हैं। इससे अवधारणाओं के बीच सम्बन्ध स्पष्ट होते हैं। पंचपदी एक शिक्षण नीति है जिसमें पाँच चरणों—अनुभव, चिंतन, अवधारणा, अनुप्रयोग और अभिव्यक्ति के माध्यम से सीख को क्रमबद्ध किया जाता है। यह प्रक्रिया बच्चों में सक्रिय सहभागिता और गहन समझ विकसित करती है।

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1. अवधारणा का अर्थ बताइए।
उत्तर—अवधारणा का अर्थ निर्माण की प्रक्रिया से है।

प्रश्न 2. बच्चे का प्रथम अधिगम स्थल।
उत्तर—बच्चे का प्रथम अधिगम स्थल घर है।

प्रश्न 3. संरचित अधिगम का स्थान बताइए।
उत्तर—संरचित अधिगम का स्थान विद्यालय है।

प्रश्न 4. वास्तविक अनुभवों से जुड़ा संदर्भ बताइए।
उत्तर—परिवेश।

प्रश्न 5. नए ज्ञान का आधार
उत्तर—पूर्व ज्ञान।

प्रश्न 6. अर्थपूर्ण अधिगम का उद्देश्य क्या है?
उत्तर—समझ विकसित करना है।

प्रश्न 7. अवधारणाओं के बीच संबंध क्या कहलाते हैं?
उत्तर—सम्बन्ध।

प्रश्न 8. व्यापक समझ से जुड़े विचार बताइए।
उत्तर—बिग आइडियाज।

प्रश्न 9. दृश्य रूप में विचार करने का साधन क्या है?
उत्तर—ग्राफिक आयोजक।

प्रश्न 10. अवधारणाओं का मानचित्र
उत्तर—कॉन्सेप्ट मैप।

प्रश्न 11. पंचपदी चरणों की संख्या बताइए।
उत्तर—पंचपदी चरणों की संख्या पाँच है।

प्रश्न 12. पंचपदी का पहला चरण क्या है?
उत्तर—पंचपदी का पहला चरण अनुभव कहा जाता है।

प्रश्न 13. बच्चों की सक्रिय भूमिका
उत्तर—सक्रिय अधिगम।

प्रश्न 14. रटंत के विपरीत अधिगम।
उत्तर—सार्थक अधिगम।

प्रश्न 15. अवधारणा निर्माण का परिणाम क्या है?
उत्तर—गहन समझ।

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. अवधारणा निर्माण क्या है?
(अ) याद करने की प्रक्रिया
(ब) अर्थ-निर्माण की प्रक्रिया
(स) परीक्षा की तैयारी
(द) अनुशासन की प्रक्रिया। ❑ **उत्तर**—(ब)

2. बच्चे का पहला अधिगम संदर्भ कौन-सा है?
(अ) विद्यालय (ब) परिवेश
(स) घर (द) समाज। ❑ **उत्तर**—(स)

3. विद्यालय का मुख्य योगदान किसमें होता है?
(अ) अनौपचारिक अधिगम (ब) संरचित अधिगम
(स) आकस्मिक अधिगम (द) अप्रत्यक्ष अधिगम।
❑ **उत्तर**—(ब)

4. परिवेश से सीखने का प्रमुख लाभ है—
(अ) अमूर्त ज्ञान
(ब) वास्तविक जीवन से जुड़ाव
(स) केवल पुस्तक ज्ञान
(द) परीक्षा केन्द्रित अधिगम। ❑ **उत्तर**—(ब)

5. नई अवधारणा को किस पर आधारित किया जाना चाहिए?
(अ) रटंत पर (ब) पूर्व ज्ञान पर
(स) परीक्षा पर (द) अनुशासन पर।
❑ **उत्तर**—(ब)

6. अर्थपूर्ण अधिगम किससे संभव है?
(अ) याद करने से (ब) सम्बन्ध बनाने से
(स) दण्ड से (द) प्रतिस्पर्धा से।
❑ **उत्तर**—(ब)

7. 'बिग आइडियाज' का उद्देश्य है—
(अ) सूचनाओं में वृद्धि
(ब) व्यापक समझ विकसित करना
(स) रटंत बढ़ाना
(द) समय बचाना। ❑ **उत्तर**—(ब)

8. ग्राफिक आयोजक का उपयोग किस लिए होता है?
(अ) लेखन के लिए
(ब) दृश्य रूप में विचार प्रस्तुत करने के लिए
(स) परीक्षा के लिए
(द) अनुशासन के लिए। ❑ **उत्तर**—(ब)

9. कॉन्सेप्ट मैप क्या दर्शाता है?
(अ) शब्दों की सूची
(ब) अवधारणाओं के बीच सम्बन्ध
(स) केवल चित्र
(द) नियमों की सूची। ❑ **उत्तर**—(ब)

10. पंचपदी में कुल चरण होते हैं—
(अ) तीन (ब) चार
(स) पाँच (द) छह। ❑ **उत्तर**—(स)

11. पंचपदी का प्रथम चरण है—
(अ) अवधारणा (ब) अनुभव
(स) अनुप्रयोग (द) अभिव्यक्ति।
❑ **उत्तर**—(ब)

12. अवधारणा का उद्देश्य है—
(अ) रटंत
(ब) सक्रिय एवं अर्थपूर्ण अधिगम
(स) परीक्षा
(द) अनुशासन। ❑ **उत्तर**—(ब)

13. अवधारणा निर्माण में शिक्षक की भूमिका है—
(अ) सूचनादाता (ब) नियंत्रक
(स) सुविधा प्रदाता (द) परीक्षक। ❑ **उत्तर**—(ब)

14. सक्रिय अधिगम में बच्चे होते हैं—
(अ) निष्क्रिय (ब) सक्रिय
(स) निर्भर (द) उदासीन ❑ **उत्तर**—(ब)

15. अवधारणा निर्माण का परिणाम होता है—
(अ) भ्रम (ब) गहन समझ
(स) तनाव (द) प्रतिस्पर्धा।
❑ **उत्तर**—(ब)

7

अधिगम के सिद्धान्त

[LEARNING THEORY]

अधिगम के प्रमुख सिद्धान्त

1. थार्नडाइक का सीखने का सिद्धान्त (प्रयत्न व भूल)—इसे 'प्रयास व त्रुटि' का सिद्धान्त भी कहते हैं। **ई. एल. थार्नडाइक** (E. L. Thorndike) ने प्रयत्न व भूल के इस सिद्धान्त के बारे में बताते हुए कहा कि, जब व्यक्ति कोई कार्य सीखता है, तब उसके सामने एक विशेष स्थिति या उद्दीपक (Stimulus) होता है, जो उसे विशेष प्रकार की प्रतिक्रिया करने के लिए प्रेरित करता है। इस प्रकार एक विशिष्ट उद्दीपक का एक विशिष्ट अनुक्रिया (response) से सम्बन्ध स्थापित हो जाता है तो उसे उद्दीपक अनुक्रिया सम्बन्ध कहते हैं।

थार्नडाइक का प्रयोग—थार्नडाइक एक पशु मनोवैज्ञानिक थे, इन्होंने बिल्ली, चूहे, मुर्गी आदि पर प्रयोग करके यह निष्कर्ष निकाला कि पशु-पक्षी व बच्चे प्रयत्न व भूल द्वारा सीखते हैं। अपने एक प्रयोग में इन्होंने एक भूखी बिल्ली को पिंजड़े में बंद कर दिया और पिंजड़े के बाहर भोज्य सामग्री रख दी गयी। बिल्ली के लिए भोजन उद्दीपक था। उद्दीपक के कारण उनमें प्रतिक्रिया आरम्भ हुई। बिल्ली ने बाहर निकलकर भोजन प्राप्त करने के लिए कई प्रयास किये और पिंजड़े के चारों ओर घूमकर कई पंजे मारे और प्रयत्न करते-करते अचानक उस तार को खींच लिया जिससे पिजंड़े का दरवाजा खुलता था। दोबारा फिर बंद करने पर उसे बाहर आने में पहले से कम समय में सफलता मिल गयी। तीसरे और चौथे प्रयास में और भी कम प्रयत्नों में सफलता मिल गयी और एक परिस्थिति ऐसी आई, जब एक बार में ही वो दरवाजा खोलकर बाहर आने लगी।

इसी प्रकार मनोवैज्ञानिक **मैक्डूगल** ने भी कई प्रयोग किये और यह सिद्ध कर दिया कि पशु या मनुष्य जितनी बार प्रयत्न करता है, उतनी ही उसकी भूलें कम होती जाती हैं और वह सफल क्रिया करना सीख लेता है।

2. पैवलव का सम्बद्ध प्रतिक्रिया का सिद्धान्त—अधिगम के इस सिद्धान्त का प्रतिपादन रूसी मनोवैज्ञानिक आई. पैवलव (I. Pavlov) ने किया। इन्होंने सबसे पहले उद्दीपन और अनुक्रिया के सम्बन्ध को अनुबन्ध द्वारा व्यक्त किया।

पैवलव का प्रयोग—पैवलव ने पशुओं पर कई प्रयोग किये। इनका प्रसिद्ध प्रयोग कुत्ते पर किया गया। कुत्ते को एक निश्चित समय पर भोजन दिया जाता था। भोजन देखते ही उसकी लार टपकने लगती थी। कुछ दिनों के बाद भोजन देने से पहले घण्टी बजाई जाने लगी। उन्होंने स्वाभाविक उद्दीपन भोजन को घण्टी बजने के कृत्रिम उद्दीपन से जोड़ दिया, जिसके फलस्वरूप कुत्ता लार टपकाता था। इसके बाद उसने कुत्ते को भोजन न देकर केवल घण्टी बजाई। घण्टी की आवाज सुनते ही बिना भोजन देखे कुत्ते ने स्वाभाविक प्रतिक्रिया (लार बहना) की। इस प्रकार अस्वाभाविक या कृत्रिम उद्दीपन (घण्टी) के प्रति भी स्वाभाविक प्रतिक्रिया लार बहने में परस्पर सम्बन्ध स्थापित हो गया। ये सम्बद्ध प्रतिक्रिया कहलाती है।

3. स्किनर का क्रिया प्रसूत सिद्धान्त—बी. एफ. स्किनर ने अधिगम के क्षेत्र में अनेक प्रयोग करते हुए यह निष्कर्ष निकाला है कि अभिप्रेरण से उत्पन्न क्रियाशीलता ही सीखने के लिए उत्तरदायी है। उन्होंने दो प्रकार क्रियाओं पर प्रकाश डाला—क्रिया प्रसूत व उद्दीपन प्रसूत। जो क्रियाएँ उद्दीपन के द्वारा होती हैं वे उद्दीपन आधारित होती हैं। क्रिया प्रसूत का सम्बन्ध किसी ज्ञात उद्दीपन से न होकर उत्तेजना से होता है।

स्किनर ने अपना प्रयोग चूहों पर किया। इससे लीवर वाला बॉक्स (स्किनर बॉक्स) बनवाया। लीवर पर चूहे का पैर पड़ते ही खट की आवाज होती थी। इस ध्वनि को सुन चूहा आगे बढ़ा और उसे प्याले में भोजन मिला। यह भोजन चूहे के लिए प्रबलन का कार्य करता है। चूहा भूखा होने पर प्रणोदित होता है और लीवर को पुनः दबाता।

इन प्रयोगों में जब प्राणी स्वयं कोई वांछित व्यवहार करता है तो व्यवहार के परिणामस्वरूप उसे पुरस्कार प्राप्त होता है। अन्य व्यवहारों के करने पर उसे सफलता प्राप्त नहीं होती। वह पुरस्कृत व्यवहार आसानी से सीख लेता है।

निष्कर्ष यह है कि यदि क्रिया के बाद कोई बल प्रदान करने वाला उद्दीपन मिलता है, तो उस क्रिया की शक्ति में वृद्धि होती है। स्किनर में मत में प्रत्येक पुनर्बलन अनुक्रिया को करने के लिए प्रेरित करता है।

4. सूझ या अन्तर्दृष्टि का सिद्धान्त—व्यक्ति कुछ कार्यों को करके सीखता है और कुछ कार्यों को दूसरों को करते देखकर सीखता है। परन्तु कुछ कार्य हम बिना बताये अपने आप ही सीख लेते हैं। इस प्रकार के सीखने को सूझ द्वारा सीखना कहते हैं।

सूझ के इस सिद्धान्त के प्रतिपादक जर्मनी के **गेस्टाल्टवादी** हैं। इसलिए **कोफ्का, कोहलर, वरदाईमर** के इस सिद्धान्त को 'गेस्टाल्टवादी सिद्धान्त' भी कहते हैं।

कोहलर के अनुसार किसी समस्या के आने पर व्यक्ति को अपनी मानसिक शक्ति द्वारा पूर्ण परिस्थिति का बोध हो जाता है और सूझ द्वारा अचानक उसका हल निकल आता है।

प्रयोग—कोहलर महोदय के सिद्धान्त के प्रतिपादन के लिए चिम्पैंजी और बंदर आदि पर प्रयोग किये। कोलहर ने सुल्तान नामक

एक चिम्पैंजी पर प्रयोग किया। चिम्पैंजी को उसने पिंजड़े में बंद कर दिया और पिंजड़े की छत से केले लटका दिये। पिंजड़े के अंदर दो छड़ियाँ एक छोटी व एक बड़ी रख दी गयीं जो एक दूसरे में जोड़ी जा सकती थीं। चिम्पैंजी ने बारी-बारी से छड़ियों द्वारा केले को गिराने का प्रयास किया। परन्तु असफल रहा और निराश होकर बैठ गया। परन्तु केलों को प्राप्त करने की समस्या मन में बनी रही। फिर वो छड़ियों से खेलने लगा, अचानक छड़ियाँ एक दूसरे में घुस गयीं और जुड़ते ही उसमें सूझ उत्पन्न हो गयी और दोनों छड़ियाँ जोड़कर केलों को गिराने में सफल हो गया। दूसरी बार वैसी ही समस्या आने पर एक ही बार में हल निकालने में सफल हो गया।

5. पियाजे का सिद्धान्त—स्विस मनोवैज्ञानिक **पियाजे** (Piaget) का कहना है कि जैसे-जैसे बच्चे की आयु बढ़ती है, उसका कार्य क्षेत्र बढ़ता जाता है। वैसे-वैसे उसकी बुद्धि का विकास भी होता जाता है। उन्होंने स्पष्ट किया है कि पहले बच्चा सरल प्रत्ययों के माध्यम से सीखता है। परन्तु जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होता है। कठिन से कठिनतम प्रत्ययों को ग्रहण करने लगता है। हमारे लिए उपयुक्त वातावरण की आवश्यकता है।

इन्होंने कहा, सीखना कोई यांत्रिक क्रिया नहीं है बल्कि एक बौद्धिक प्रक्रिया है, एक सम्प्रत्यय निर्माण की प्रक्रिया है और वह सम्प्रत्यय निर्माण बालक की आयु के अनुसार होता रहता है।

पियाजे ने अपने सिद्धान्त में निम्नलिखित पदों पर विशेष बल दिया है—

(1) अनुकूलन (Adaptation), (2) साम्यधारणा (Equilibration), (3) संरक्षण (Conservation), (4) संज्ञानात्मक संरचना (Cognitive Structure), (5) मानसिक क्रिया (Mental Operation), (6) स्कीम्स (Schemes), (7) स्कीमा (Schema), (8) विकेन्द्रण (Decentering)।

6. व्योगास्टस्की का सिद्धान्त—Lev Vygostsky (1896-1934) ने संज्ञानात्मक विकास में सामाजिक अन्तर्क्रिया पर अधिक बल दिया और कहा कि समुदाय का सीखने में बहुत महत्व है। सामाजिक सीखने (Social Learning) की प्रक्रिया विकास के पहले ही आरम्भ हो जाती है। व्यक्तिगत विकास को भी सामाजिक विकास के बिना नहीं समझा जा सकता। व्यक्ति की उच्च मानसिक प्रक्रिया (Higher Mental Process) की उत्पत्ति (Orgin) भी सामाजिक प्रक्रिया से होती है।

(i) संस्कृति संज्ञात्मक विकास को दिशा देती है।

(ii) संज्ञानात्मक विकास में सामाजिक विकास का बहुत महत्व है।

(iii) व्योगोस्की ने संज्ञानात्मक विकास (Cognitive development) के लिए भाषा पर बल दिया। तर्क करना, चिन्तन करना आदि सभी सांस्कृतिक कारकों को मदद करते हैं।

(i) सीखने में शिक्षक का महत्वपूर्ण स्थान है।

(ii) ज्ञान भी सामाजिक सन्दर्भ में होता है।

7. ब्रूनर (Bruner) **का सिद्धान्त**—ब्रूनर ने मुख्य रूप से दो बातों पर ध्यान दिया। पहला, यह कि शिशु अपनी अनुभूतियों को मानसिक रूप से किस प्रकार व्यक्त करता है और दूसरा यह कि शैशवावस्था और बाल्यावस्था में बालक चिन्तन कैसे करता है।

ब्रूनर के अनुसार शिशु अपनी अनुभूतियों को मानसिक रूप से तीन तरीकों से अभिव्यक्त करते हैं—

(1) सक्रियता विधि—इस विधि में शिशु अपनी अनुभूतियों को शब्दहीन क्रियाओं के द्वारा व्यक्त करता है। जैसे—भूख लगने पर रोना, हाथ-पैर हिलाना आदि इन क्रियाओं द्वारा बालक बाह्य वातावरण से सम्बन्ध स्थापित करता है।

(2) दृश्य प्रतिमा विधि—इस विधि में बालक अपनी अनुभूति को अपने मन में कुछ दृश्य प्रतिमाएँ (Visual images) बनाकर प्रकट करता है। इस अवस्था में बच्चा प्रत्यक्षीकरण के माध्यम से सीखता है।

(3) सांकेतिक विधि—इस विधि में बालक अपनी अनुभूतियों को ध्वन्यात्मक संकेतों (भाषा) के माध्यम से व्यक्त करता है। इस अवस्था में बालक अपने अनुभवों को शब्दों में व्यक्त करता। इस प्रकार बालक प्रतीकों (Symbols) को उनके मूल विचारों से सम्बन्धित करने की योग्यता का विकास करता है।

ब्रूनर के सिद्धान्त की विशेषताएँ

ब्रूनर के सिद्धान्त की विशेषताएँ निम्न हैं—

(1) ब्रूनर का सिद्धान्त बालक के पूर्व अनुभवों तथा नये विषय-वस्तु से समन्वय के लिए अनुकूल वातावरण तैयार करने पर बल देता है।

(2) विषय-वस्तु की संरचना ऐसी हो कि बच्चे सुगमता व सरलता से सीख सकें।

(3) इस सिद्धान्त के अनुसार विषयवस्तु जो सिखाई जाती है, ऐसे अनुक्रम बारम्बारता से प्रस्तुत की जाये, जिससे बच्चे तार्किक ढंग से एवं अपनी कठिनाई स्तर के अनुसार सीखते हैं।

(4) यह सिद्धान्त सीखने में पुनर्बलन, पुरस्कार व दण्ड आदि पर बल देता है।

(5) इस सिद्धान्त के अनुसार शिक्षा बालक में व्यक्तिगत व सामाजिक दोनों गुणों का विकास करती है।

अनुभवात्मक अधिगम

(Experiential Learning)

अनुभवात्मक अधिगम (Experiential Learning) का अर्थ है **सीखना, सीधे अनुभव और गतिविधियों के माध्यम से**। यह सिद्धान्त बताता है कि बच्चे केवल सुनने या पढ़ने से नहीं, बल्कि **करने और अनुभव करने से बेहतर सीखते हैं**। कक्षा में इसे लागू करने से शिक्षण अधिक प्रभावी और यादगर बनता है।

1. करके सीखना (Learning by Doing)—बच्चे परियोजना, प्रयोग और रोल प्ले गतिविधियों के माध्यम से समझते हैं।

2. चिंतन (Reflection)—अनुभव के बाद बच्चे सोचते हैं कि उन्होंने क्या सीखा और इसे कैसे सुधार सकते हैं।

3. सक्रिय भागदारी (Active Participation)—छात्र अपने अनुभव साझा करते हैं और सहपाठी के अनुभवों से सीखते हैं।

4. समस्या समाधान (Problem Solving)—वास्तविक जीवन की समस्याओं पर काम करने से गहन चिन्तन (Critical thinking) और निर्णय क्षमता कौशल (Decision-making skills) विकसित होती हैं।

कक्षा में प्रयोगात्मक तरीके लागू करने से बच्चे **जागरूक, सक्रिय और स्वतंत्र सोच वाले** बनते हैं। यह सीखने को जीवन से जोड़ता है और सीखने की प्रक्रिया को अर्थपूर्ण बनाता है।

टॉय-आधारित शिक्षण
(Toy-Based Pedagogy)

बच्चों के सीखने का एक प्रभावी दृष्टिकोण है जिसमें **खिलौनों और शैक्षिक खेलों का उपयोग** करके अवधारणाओं (Concepts) को सिखाया जाता है। यह सिद्धांत कहता है कि छोटे बच्चों के लिए **खेल और खिलौने सीखने का मुख्य माध्यम** होते हैं।

1. सक्रिय भागीदारी (Active Engagement)—बच्चे खिलौनों के माध्यम से विभिन्न क्रियाएँ करते हैं और संदर्भ (concept) को अनुभव करते हैं।

2. ठोस अनुभव के माध्यम से सीखना (Concrete Learning)—उदाहरण के लिए गिनती के ब्लॉक (counting blocks) से गणित के प्रारम्भिक तरीके सीखना आसान होता है।

3. सृजनात्मकता और कल्पना (Creativity and Imagination)—खिलौनों के साथ खेलते समय बच्चे अपनी कल्पनाशक्ति और समस्या सुलझाने की क्षमता विकसित करते हैं।

4. सहभागी अधिगम (Collaborative Learning)—समूह में खेलते समय बच्चे आपस में सीखते हैं, चर्चा करते हैं और सामाजिक कौशल विकसित करते है।

5. व्यावहारिक अनुभव (Hands-on Experience)—खिलौने के उपयोग से बच्चे नए विचार को समझ पाते हैं।

कला समन्वित अधिगम
(Art-Integrated Learning)

एक ऐसा दृष्टिकोण है जिसमें **कला और शैक्षिक विषयों को एक साथ जोड़कर** पढ़ाया जाता है। इसका उद्देश्य बच्चों के **सृजनात्मक, संवेदी और बौद्धिक विकास** को बढ़ाना है। कला समन्वित अधिगम (Art-Integrated Learning) बच्चों को निष्क्रिय बनने से रोकता है और उन्हें सक्रिय के माध्यम से सीखने में मदद करता है।

1. सृजनात्मक अभिव्यक्ति (Creative Expression)—कला गतिविधियों जैसे ड्राइंग, पेंटिंग, नाटक और संगीत के माध्यम से बच्चे अपने विचार और भावनाएँ व्यक्त करते हैं।

2. गहन समझ (Encanced Understanding)—उदाहरण के लिए विज्ञान के विषय को चित्र, मॉडल या नाटक के माध्यम से समझाना बच्चों के लिए आसान और यादगार बनाता है।

3. समीक्षात्मक सोच और समस्या समाधान (Critical Thinking and Problem Solving)—कला आधारित योजना बच्चों को सोचने, विश्लेषण करने और नई तरीके खोजने के लिए प्रेरित करते हैं।

4. सहभागी अधिगम (Collaborative Learning)—समूह में कला-आधारित गतिविधियाँ बच्चे को मिलकर (team work) और सामाजिक कौशल (social skills) सिखाती हैं।

5. सक्रिय भागीदारी और प्रेरणा (Engagement and Motivation)—कला के माध्यम से सीखना रोचक होता है, जिससे बच्चे अधिक अभिप्रेरित (motivated) रहते हैं।

निर्देशित पूछताछ तथा समस्या समाधान
(Guided Inquiry and Problem Solving)

अधिगम दृष्टिकोण बच्चों को सक्रिय रूप से सीखने और **समस्या सुलझाने की क्षमता विकसित करने** में मदद करता है। इस दृष्टिकोण में शिक्षक केवल जानकारी देने वाले नहीं होते, बल्कि बच्चों **को सोचने, सवाल पूछने और अनुभव से सीखने** के लिए मार्गदर्शन करते हैं। यह दृष्टिकोण विशेष रूप से उन कक्षाओं में प्रभावी होता है जहाँ गहन सोच और गहन अध्ययन को बढ़ावा देना महत्वपूर्ण होता है।

1. सक्रिय भागीदारी (Active Participation)—बच्चे सवाल पूछते हैं, परिकल्पना बनाते हैं और प्रयोगों के माध्यम से जाँचते हैं।

2. शिक्षक मार्गदर्शक (Teacher as a Facilitator)—शिक्षक छात्र को निर्देश देते हैं, सुझाव देते हैं, लेकिन समाधान खुद खोजने की स्वतन्त्रता देते हैं।

*** समस्या आधारित अधिगम** (Problem Based Learning)—वास्तविक जीवन की समस्याओं पर काम करके बच्चे कौशल और निर्णय क्षमता विकसित करते हैं।

3. सहभागी अधिगम (Collaborative Learning)—समूह में काम करने से छात्र अपने विचार-विर्मर्श करते हैं और सहपाठी से सीखते हैं।

4. चिंतनात्मक सोच (Reflective Thinking)—समाधान खोजने के बाद बच्चे अपने कार्य का मूल्यांकन करते हैं और अन्य विकल्प पर विचार करते हैं।

5. प्रेरणा और भागीदारी (Motivation and Engagement)—निर्देशित पूछताछ से सीखना रोचक और चुनौतीपूर्ण होता है, जिससे बच्चे अधिक प्रेरित करते हैं।

कक्षा में निर्देशित पूछताछ और समस्या समाधान अपनाने से छात्र स्वतंत्र चिन्तक, समस्या समाधान करने वाले तथा जीवनभर सीखने वाले बनते हैं। यह approach knowledge को सिर्फ याद करने से आगे बढ़कर **व्यावहारिक और अर्थपूर्ण सीखने** की दिशा में ले जाता है।

शिक्षार्थी स्वायत्तता
(Later Autonomy)

शिक्षार्थी स्वायत्तता का अर्थ है **छात्र की स्वयं सीखने की क्षमता और स्वतन्त्रता।** इस दृष्टिकोण में शिक्षक केवल मार्गदर्शक होते हैं और छात्र खुद अपने लक्ष्य निर्धारित करते हैं रणनीतियाँ अपनाते हैं और अपने learning outcomes के लिए जिम्मेदार होते हैं। यह दृष्टिकोण बच्चों को सक्रिय, स्वप्रेरित बनने में मदद करता है।

1. स्वयं निर्देशित अधिगम (Self-Directed Learning)—बच्चे अपनी आवश्यकता के अनुसार विषय चुनते हैं और स्वयं अध्ययन करते हैं।

2. समीक्षात्मक सोच और निर्णय क्षमता (Critical Thinking and Decision Making)—छात्र अपने सीखने की प्रक्रिया का मूल्यांकन करते हैं और निर्णय लेते हैं कि कौन-सा तरीका उनके लिए सबसे प्रभावी है।

3. अधिगम की जिम्मेदारी (Ownership of Learning)—सीखने की जिम्मेदारी खुद लेने से बच्चे अधिक committed और motivated रहते हैं।

4. लचीली अधिगम रणनीतियाँ (Flexible Learning Strategies)—छात्र अपने समय और संसाधनों का उपयोग करके अपनी सुविधानुसार करते हैं।

5. शिक्षक मार्गदर्शक (Teacher as a Facilitator)—शिक्षक सुझाव देते हैं, मार्गदर्शन करते हैं, लेकिन अन्तिम निर्णय (final decision) और learning pace छात्र पर निर्भर करता है।

6. सहभागी अधिगम (Collaborative Opportunities)—स्वतंत्र सीखने के बावजूद, समूह गतिविधियाँ और peer interaction बच्चे की समझ और communication skills को बढ़ाते हैं।

कक्षा में Learner Autonomy को बढ़ावा देने से छात्र independent thinkers, self-motivated learners और problem solvers बनते हैं। यह approach बच्चों को lifelong learning की दिशा में तैयार करता है और सीखने को meaningful, relevant और engaging बनता है।

शिक्षक की भूमिका सूत्रधार के रूप में
(Teaching Role of Teacher as Facilitator)

शिक्षक का Facilitator **के रूप में भूमिका** आधुनिक शिक्षण में बहुत महत्वपूर्ण है। इस दृष्टिकोण में शिक्षक केवल ज्ञान देने वाले नहीं होते, बल्कि **सीखने की प्रक्रिया को मार्गदर्शन देने वाले और छात्र को सक्रिय रूप से शामिल करने वाले** बनते हैं। इसका मुख्य उद्देश्य छात्रों को independent, critical और self-motivated learner बनता है।

1. मार्गदर्शन और समर्थन (Gudiance and Support)—शिक्षक छात्रों को सही दिशा में सोचने और समस्या सुलझाने के लिए सुझाव देते हैं, बिना उत्तर सीधे बताइए।

2. शिक्षण वातावरण तैयार करना (Creating Learning Environment)—शिक्षक ऐसी कक्षा बनाते हैं जहाँ students open discussion, inquiry और experimentation कर सकें।

3. समीक्षात्मक सोच को प्रोत्साहित करना (Encouraging Critical Thinking)—शिक्षक छात्र से सवाल पूछने और अलग-अलग दृष्टिकोण अपनाने के लिए प्रेरित करते हैं।

4. सहभागिता को बढ़ावा देना (Promoting Collaboration)—group activities और peer interaction के माध्यम से छात्र एक-दूसरे से सीखते हैं और teamwork develop होता है।

5. स्वयं-अधिगम को आसान बनाना (Faciliating Self-Learning)—शिक्षक छात्र को resources, tools और strategies प्रदान करते हैं ताकि वे स्वयं सीख सकें और अपने learning goals achieve कर सकें।

6. प्रेरणा और प्रतिक्रिया (Motivation and Feedback)—शिक्षक छात्र को सकारात्मक feedback देते हैं और उनकी learning process में motivation बनाए रखते हैं।

Classroom में teacher as facilitator अपनाने से students active learners, inpendent thinkers और problem solvers बनते हैं। यह approach सीखने को interactive, engaging और meaningful बनाता है और बच्चों को life long learning की दिशा में तैयार करता है।

दीर्घ एवं लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1. अनुभवात्मक अधिगम की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए तथा कक्षा शिक्षण में इसके निहितार्थों का वर्णन कीजिए।

उत्तर—अनुभवात्मक अधिगम वह प्रक्रिया है जिसमें बच्चे प्रत्यक्ष अनुभवों के माध्यम से सीखते हैं। इसमें 'करके सीखना' प्रमुख होता है। कक्षा में गतिविधियाँ, प्रयोग, परियोजना कार्य एवं वास्तविक जीवन की स्थितियाँ अनुभवात्मक अधिगम को सशक्त बनाती हैं। इससे बच्चों की समझ गहरी होती है, आत्मविश्वास बढ़ता है तथा सीख स्थायी बनती है।

प्रश्न 2. खिलौना-आधारित शिक्षण एवं कला-एकीकृत अधिगम का शैक्षिक महत्व स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—खिलौना-आधारित शिक्षण बच्चों की जिज्ञासा एवं रुचि को बढ़ाता है। खिलानों के माध्यम से अवधारणाएँ सरल और रोचक बनती हैं। कला-एकीकृत अधिगम में संगीत, चित्रकला, नाटक एवं नृत्य का प्रयोग कर सीख को रचनात्मक बनाया जाता है। ये दोनों दृष्टिकोण संज्ञानात्मक, सामाजिक-भावनात्मक एवं भाषा विकास में सहायक होते हैं।

प्रश्न 3. निर्देशित अन्वेषण, समस्या-समाधान, शिक्षार्थी स्वायत्तता एवं शिक्षक की सुविधा प्रदाता के रूप में भूमिका की विवेचना कीजिए।

उत्तर—निर्देशित अन्वेषण में शिक्षक मार्गदर्शन करता है परन्तु सीखने की जिम्मेदारी बच्चे की होती है। समस्या-समाधान से तार्किक एवं आलोचनात्मक चिंतन विकसित होता है। शिक्षार्थी स्वायत्तता बच्चों को स्वतंत्र निर्णय एवं आत्म-नियंत्रण की क्षमता देती है। शिक्षक सुविधा प्रदाता के रूप में अनुकूल वातावरण, संसाधन और समर्थन प्रदान करता है।

प्रश्न 4. सीखने की प्रभावशाली विधियाँ कौन-सी हैं ?

उत्तर—सीखने की प्रमुख प्रभावशाली विधियाँ निम्नांकित हैं—

1. करके सीखना (Learning by doing)—बालक जिस कार्य को स्वयं करते हैं, उसे जल्दी सीखते हैं, क्योंकि उसमें उद्देश्य निहित होते हैं। वे यह भी देखते हैं कि उनका प्रयास सफल हुआ है या नहीं और यदि असफल रहते हैं तो उसमें हुई गलतियों को ज्ञात करके उनका निराकरण करने का प्रयास करते हैं। इस संदर्भ में फ्रोबेल (Frobel) का विचार है—"क्रिया के द्वारा ही बालक किसी कार्य को सीखता है, अतएव जहाँ तक सम्भव हो सके बालक को 'करके सीखने' का अवसर दिया जाए।"

2. अनुकरण द्वारा सीखना—अनुकरण से आशय किसी व्यक्ति के द्वारा किए गए कार्य को फिर से करना है। व्यक्ति सभी व्यक्तियों के कार्य को अनुकरण न करके अपने से योग्य व्यक्तियों का ही अनुकरण करता है। बालक प्राय: अनुकरण द्वारा ही सीखते हैं। अनुकरण दो प्रकार का है—(i) अनजाने में, (ii) जानबूझकर।

3. निरीक्षण करके सीखना (Learning by Observation)—बालक जिस वस्तु का निरीक्षण करते हैं, उसके बारे में वे जल्दी और स्थायी रूप से सीखते हैं। इस विधि में निरीक्षण करते समय बालक अपनी अधिक-से-अधिक ज्ञानेन्द्रियों का प्रयोग करता है। इसलिए यह विधि अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

4. परीक्षण करके सीखना (Learning by Experimenting)—नई बातों की खोज करना, एक प्रकार का सीखना है। बालक इस कार्य को परीक्षण द्वारा ही कर सकता है।

5. सामूहिक विधियों द्वारा सीखना (Learning by group Methods)—सीखने का कार्य व्यक्तिगत और सामूहिक विधियों द्वारा होता है, इन दोनों में सामूहिक विधियों को अधिक उपयोगी और प्रभावशाली माना जाता है।

मुख्य सामूहिक विधियाँ निम्नांकत हैं—

(i) वाद विवाद विधि (Discussion Method)—इस विधि में छात्र को बिना किसी हिचकिचाहट के शिक्षक से तथा परस्पर प्रश्न पूछने एवं विचार-विमर्श करने की स्वतन्त्रता होती है।

(ii) सम्मेलन एवं विचार गोष्ठी विधियाँ (Conference and Seminar Method)—इस विधि में किसी विशेष-विषय पर छात्र/छात्राओं द्वारा विचार-विमर्श, वाद-विवाद एक निश्चित समय में करना होता है। इसमें ऐसे प्रकरण पर विचार किया जाता है जिसमें सभी सदस्यों की रुचि होती है। इसके द्वारा लोगों में सामाजिक एवं भावनात्मक गुणों का विकास होता है इसके द्वारा दूसरों के विरोधी विचारों का सम्मान एवं सहनशीलता की भावना विकसित होती है।

(iii) कार्यशाला विधि (Workshop Method)—इस विधि में विभिन्न दर्शनों पर सभाओं का आयोजन किया जाता है और इन दर्शनों के प्रत्येक पहलू का छात्रों द्वारा अध्ययन किया जाता है।

(iv) प्रोजेक्ट, डाल्टन व बेसिक विधियाँ (Project Dalton, Basic Methods)—इन विधियों में छात्र अपनी रुचि, ज्ञान एवं क्षमता के अनुसार कार्य करता है जिससे सीखने की प्रक्रिया सरल हो जाती है।

6. समूह अधिगम—इस विधि में बालकों को समूह के रूप में एक बैठाकर उनको चित्र द्वारा अथवा अन्य सामग्री देकर सिखाने का प्रयास किया जाता है। इसमें बालकों का मानसिक विकास सम्भव है तथा बालक शीघ्रतापूर्वक सीखते हैं।

प्रश्न 5. अधिगम की विशेषताएँ लिखिए।

उत्तर—अधिगम की विशेषताएँ (Characteristics of Learning)

मनोवैज्ञानिकों की विभिन्न परिभाषाओं के आधार पर **योकम एण्ड सिम्पसन** (Yokam and Simpson) ने अधिगम की अग्रांकित विशेषताओं का उल्लेख किया—

1. अधिगम : परिवर्तन है।
2. अधिगम : सम्पूर्ण जीवन चलता है।
3. अधिगम : सार्वभौमिक है।
4. अधिगम : विकास है।
5. अधिगम : अनुकूलन है।
6. अधिगम : अनुभवों का संगठन है।
7. अधिगम : उद्देश्यपूर्ण है।
8. अधिगम : विवेकपूर्ण है।
9. अधिगम : खोज करना है।
10. अधिगम : नवीन कार्य करना है।

प्रश्न 6. अधिगम का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition)

प्रत्येक मनुष्य प्रतिदिन अपने जीवन में नए-नए अनुभव एकत्र कर व्यवहार में वृद्धि तथा संशोधन करते हैं। ये अनुभव तथा इनका उपयोग ही 'सीखना' या 'अधिगम' कहलाता है। दूसरे शब्दों में सीखना वह मानसिक क्रिया है जिसमें बालक परिपक्वता की ओर बढ़ता हुआ और अपने अनुभवों से लाभ उठाता हुआ अपने स्वाभाविक व्यवहार में परिवर्तन करता है।

सीखने के अर्थ को और अधिक स्पष्ट करते हुए मनोवैज्ञानिकों ने विभिन्न परिभाषाएँ दी हैं, जो निम्नांकित हैं—

1. वुडवर्थ के शब्दों में—"सीखना, विकास की प्रक्रिया है।"

2. स्किनर के शब्दों में, "सीखना, व्यवहार में उत्तरोत्तर सामंजस्य की प्रक्रिया है।"

3. गेट्स व **अन्य** शब्दों में, "सीखना, अनुभव और प्रशिक्षण द्वारा व्यवहार में परिवर्तन है।"

4. क्रो व **क्रो** के शब्दों में, "सीखना या अधिगम आदतों, ज्ञान और अभिवृत्तियों का अर्जन है।"

प्रश्न 7. सीखने के (अधिगम के) मुख्य नियम बताइए।

उत्तर—सीखने के मुख्य नियम इस प्रकार हैं—

1. तत्परता का नियम—जब हम किसी कार्य को सीखने के लिए तैयार या तत्पर होते हैं, तो हम उसे शीघ्र सीख लेते हैं। किसी समस्या को हल करने के लिए प्रयत्नशील होना तत्परता कहलाती है। यदि बच्चे में गणित के प्रश्न हल करने की इच्छा है, तो तत्परता के कारण वह उनको अधिक शीघ्रता और कुशलता से करता है। काम करने में आनंद एवं संतोष का अनुभव करेगा। इसके विपरीत सीखने के लिए तैयार नहीं होने की दशा में बच्चे को सीखने की क्रिया से असन्तोष मिलता है और प्राय: यह खीज (Annoyance) उठता है।

2. अभ्यास का नियम—इस नियम का तात्पर्य—"अभ्यास कुशल बनाता है।" यदि हम किसी कार्य का अभ्यास करते हैं तो हम उसे सरलतापूर्वक करना सीख जाते हैं और उसमें कुशल हो जाते हैं। हम बिना अभ्यास किए साइकिल पर चढ़ने में या कोई खेल खेलने में कुशल नहीं हो सकते हैं।

यदि हम किसी सीखने हुए कार्य का अभ्यास नहीं करते हैं, तो हम भूल जाते हैं। अभ्यास से सीखना स्थायी होता है। इसे थार्नडाइक

ने उपयोग का नियम और बिना अभ्यास से ज्ञान विस्मृत हो जाता है उसे अनुप्रयोग का नियम कहा है।

3. प्रभाव का नियम—प्राय: हम उस कार्य को ज्यादा अच्छे से करना चाहते हैं जिसका परिणाम हमारे लिए हितकर होता है, जिससे हमें सुख एवं सन्तोष मिलता है। यदि हमें किसी कार्य को करने या सीखने में कष्ट होता तो हम उस क्रिया को दोहराते नहीं है।

प्रश्न 8. सीखने के नियमों का शैक्षिक महत्व बताइए।

उत्तर— सीखने के नियमों का शैक्षिक महत्व

विद्वानों ने सीखने की क्षमता को बढ़ावा देने के लिए सीखने के नियमों का शैक्षिक महत्व माना है जो अग्रवत् है—

1. उद्देश्यों की स्पष्टता (Clarity of Aims)—शिक्षा के क्षेत्र में ज्ञान का उद्देश्य निश्चित, स्पष्ट एवं जीवनपयोगी होना चाहिए। जब बच्चे उसे सीख लेंगे तो स्वत: ही सीखने के क्षेत्र में अपने ध्यान को एकाग्र कर सकेंगे। वे सुख देने वाला कार्य कष्ट देने वाले कार्य की अपेक्षा शीघ्र करते एवं सीखते हैं।

2. उपयुक्त ज्ञान एवं क्रिया का चयन (Selection of Action and Approprite Knowledge)—बच्चे की शारीरिक एवं मानसिक क्षमता का मूल्यांकन करने के बाद ही सीखने वाले को उपयुक्त ज्ञान एवं क्रिया और विधि का चुनाव करना चाहिए। इससे उसे स्थानान्तरण एवं अभ्यास में सरलता होती है।

3. अभ्यास जागृत करना (To Awake Exercise)—शिक्षक को विषय अथवा पाठ बार-बार दोहराकर अभ्यास करना चाहिए। शिक्षक द्वारा छात्रों को यह बतलाना कि बार-बार अभ्यास करने से सीखा गया ज्ञान स्थाई रहता है तथा बिना अभ्यास के यह विस्मृत हो जाता है।

4. तत्परता जागृत करना (To Awake Readiness)—बच्चा अपने कार्य को तभी सीख सकते हैं कि जब वह सीखने के लिए तैयार होंगे। तत्परता बच्चों की रुचि, उत्साह, शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य आदि पर निर्भर करता है। अत: शिक्षक को चाहिए कि वह बच्चों को सिखाने से पहले तैयार कर लें ताकि वे ज्ञान को ठीक तरीके से ग्रहण कर सकेंगे।

5. स्वक्रिया पर बल (Stress on Self-Action)—अधिगमकर्ता को स्वयं हाथों से कार्य को करके सीखना चाहिए। इससे उसकी नियुक्ति मजबूत एवं स्थायी होता है। इससे स्वनिर्भरता का विकास होता है।

6. अनुभव स्थानान्तरण (Experience Transfer)—सीखने के नियमों से यह स्पष्ट होता है कि मानवीय अनुभव का विशेष महत्व होता है। शिक्षक को चाहिए कि वे छात्रों को अधिक-से-अधिक अनुभव एकत्रित करने का अवसर दे। इसके पश्चात् वे छात्रों को अनुभवों की नवीन समस्या या कार्य के सीखने में उपयोगिता बताये। इस प्रकार बार-बार अभ्यास और प्रयोग से छात्र स्वत: ही अनुभवों का प्रयोग करना सीख जायेंगे।

7. प्रेरकों का प्रयोग (Use of Motives)—सीखने के नियमों ने यह स्पष्ट कर दिया है कि सीखने के लिए उचित वातावरण एवं प्रेरकों का प्रयोग आवश्यक है। जब हम बच्चों को पुरस्कार, प्रोत्साहन, प्रशंसा के द्वारा सीखने के लिए तैयार करते हैं तो वह सीखने के प्रति उत्साह एवं रुचि को प्रकट करते हैं। शिक्षकों को चाहिए कि वे पठन-पाठन के बीच-बीच में बच्चों को उत्साहित करते रहें, इससे वे प्रसन्न रहते हैं तथा शिक्षक को भी परिश्रम कम करना पड़ता है।

इस प्रकार थार्नडाइक का सीखने के नियम शिक्षा के क्षेत्र में लाभप्रद रहे हैं। सीखने के प्रति छात्रों को उत्साहित बनाना शिक्षक का प्रथम कर्तव्य होना चाहिए।

प्रश्न 9. सीखने के सहायक नियम कौन-कौन से हैं ? बताइए।

उत्तर— सीखने के सहायक या गौण नियम

थार्नडाइक ने सीखने के पाँच गौण नियमों का प्रतिपादन किया है, इन नियमों का महत्व मुख्य नियम से कम है, इसलिए ये गौण नियम हैं—

(i) मनोवृत्ति का नियम (Law of Disposition)

(ii) बहु अनुक्रिया का नियम (Law of Multiple Response),

(iii) आंशिक क्रिया का नियम (Law of Partial Activity),

(iv) अनुरूपता का नियम (Law of Analogy),

(v) सम्बन्धित परिवर्तन का नियम (Law of Associative Shifting)।

(i) मनोवृत्ति का नियम (Law of Disposition)—जिस कार्य के प्रति हमारी अभिवृत्ति या मनोवृत्ति रहती है उसी अनुपात में हम उसको सीखते हैं। अनुकूल मनोवृत्ति होने पर बालक शीघ्र सीखता है तथा प्रतिकूल मनोवृत्ति होने पर बालक के सीखने में बाधाएँ आती हैं।

(ii) बहु अनुक्रिया का नियम (Law of Multiple Response)—इस नियम के अनुसार जब हम कोई नया कार्य करना सीखते हैं तब हम उसके प्रति विभिन्न प्रकार की अनुक्रियाएँ करते हैं। इनमें से कुछ अनुक्रियाएँ लक्ष्य प्राप्ति में सहायक नहीं होती है, उन्हें हम छोड़ देते हैं और फिर भूल जाते हैं। हम उन्हीं अनुक्रियाओं का चयन करते हैं, जो लक्ष्य प्राप्ति में सहायक होती है, इसे ही सीखना कहते हैं।

कक्षा-कक्ष परिस्थिति में इस नियम के अनुसार बच्चों को स्वयं करके सीखने के लिए प्रेरित करना चाहिए।

(iii) आंशिक क्रिया का नियम (Law of Partial Activity)—थार्नडाइक का मानना है कि यदि बच्चों के सामने किसी समस्या को छोटे-छोटे भागों में विभाजित कर प्रस्तुत किया जाए और एक-एक भाग का समाधान किया जाए तो पूरी समस्या को शीघ्रता एवं सुगमता से समझकर सम्पूर्ण कार्य को पूरा कर सकते हैं।

शिक्षक को चाहिए कि वे बच्चों के समक्ष समस्या प्रस्तुत करते समय उनके विभिन्न अंगों के विषय में बतायें और उन्हें अलग-अलग हलकर सम्पूर्ण समस्या का समाधान करने के लिए प्रेरित करे। बच्चों को अश से पूर्ण की ओर चढ़ने के अवसर प्रदान करना चाहिए।

(iv) अनुरूपता का नियम (Law of Analogy)—जब व्यक्ति के सामने कोई नई समस्या आती है तो वह अपने पूर्ण के अनुभवों एवं प्रयत्नों को स्मरण करता है और उनसे तुलना करता है कि उसके अनुसार क्रिया कर समस्या का समाधान खोजने का प्रयत्न करता है।

प्रश्न 10. कोहलर के 'अन्तदृष्टि सिद्धान्त' से आपका क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—हम कुछ कार्यों को करके सीखते हैं और कुछ को दूसरों को करते हुए सीखते हैं। कुछ कार्य ऐसे भी होते हैं जिन्हें हम स्वयं अपने आप सीख लेते हैं। इस प्रकार के सीखने को 'सूझ द्वारा सीखना' कहते हैं। इसका अर्थ स्पष्ट करते हुए **कोहलर** ने लिखा है—"सूझ, वास्तविक स्थिति का आकस्मिक निश्चित एवं तत्कालिक ज्ञान है।"

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1. करके सीखना क्या कहलाता है?
उत्तर—अनुभवात्मक अधिगम।

प्रश्न 2. खिलौनों के माध्यम से सीख क्या मिलती है?
उत्तर—खिलौना-आधारित शिक्षण।

प्रश्न 3. कला के साथ सीखना
उत्तर—कला-एकीकृत अधिगम

प्रश्न 4. प्रश्नों के माध्यम से सीख
उत्तर—अन्वेषण।

प्रश्न 5. समस्या का समाधान करने की क्षमता
उत्तर—समस्या-समाधान।

प्रश्न 6. स्वयं सीखने की स्वतंत्रता
उत्तर—शिक्षार्थी स्वायत्तता।

प्रश्न 7. शिक्षक की नई भूमिका
उत्तर—सुविधा प्रदाता।

प्रश्न 8. सक्रिय सहभागिता का आधार क्या है?
उत्तर—अनुभव।

प्रश्न 9. रचनात्मकता बढ़ाने वाला अधिगम
उत्तर—कला-एकीकृत अधिगम।

प्रश्न 10. जिज्ञासा को बढ़ाने वाला शिक्षण
उत्तर—अन्वेषण आधारित।

प्रश्न 11. आलोचनात्मक चिंतन विकसित करता है।
उत्तर—समस्या-समाधान।

प्रश्न 12. शिक्षण में आनंद का स्त्रोत क्या है?
उत्तर—खिलौना-आधारित शिक्षण।

प्रश्न 13. कक्षा में मार्गदर्शन करने वाला कौन होता है?
उत्तर—शिक्षक।

प्रश्न 14. शिक्षार्थी केन्द्रित शिक्षण
उत्तर—आधुनिक दृष्टिकोण।

प्रश्न 15. स्थायी अधिगम का आधार क्या है?
उत्तर—अनुभव।

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. अनुभवात्मक अधिगम का मुख्य सिद्धान्त है—
(अ) सुनकर सीखना (ब) करके सीखना
(स) याद करके सीखना (द) देखकर सीखना।
❑ **उत्तर**—(ब)

2. खिलौना-आधारित शिक्षण का उद्देश्य है—
(अ) अनुशासन (ब) रुचि एवं जिज्ञासा बढ़ाना
(स) परीक्षा तैयारी (द) नियंत्रण। ❑ **उत्तर**—(ब)

3. कला-एकीकृत अधिगम में किसका प्रयोग किया जाता है?
(अ) केवल पाठ्य-पुस्तक (ब) कला के विभिन रूप
(स) केवल परीक्षा
(द) केवल व्याख्ययान। ❑ **उत्तर**—(ब)

4. निर्देशित अन्वेषण में शिक्षक की भूमिका होती है—
(अ) नियंत्रक (ब) मार्गदर्शक
(स) निर्णायक (द) परीक्षक। ❑ **उत्तर**—(ब)

5. समस्या-समाधासन अधिगम किसे विकसित करता है?
(अ) रटंत (ब) तार्किक चिंतन
(स) भय (द) निष्क्रियता।❑ **उत्तर**—(ब)

6. शिक्षार्थी स्वायत्तता का अर्थ है—
(अ) शिक्षक पर पूर्ण निर्भरता
(ब) स्वयं निर्णय लेने की क्षमता
(स) अनुशासनहीनता
(द) एकांत अध्ययन। ❑ **उत्तर**—(ब)

7. शिक्षक सुविधा प्रदाता के रूप में क्या करता है?
(अ) केवल व्याख्यान (ब) संसाधन एवं समर्थन प्रदान
(स) दण्ड देता है (द) केवल मूल्यांकन।
❑ **उत्तर**—(ब)

8. अनुभवात्मक अधिगम से क्या बढ़ता है?
(अ) भ्रम (ब) आत्मविश्वास
(स) भय (द) निष्क्रियता।❑ **उत्तर**—(ब)

9. खिलौना-आधारित शिक्षण किस स्तर पर अधिक प्रभाव है?
(अ) उच्च शिक्षा (ब) आधारभूत स्तर
(स) केवल माध्यमिक (द) केवल उच्चतर।
❑ **उत्तर**—(ब)

10. कला-एकीकृत अधिगम का परिणाम है—
(अ) एकरूपता (ब) रचनात्मकता
(स) उदासीनता (द) भय। ❑ **उत्तर**—(ब)

11. अन्वेषण आधारित शिक्षण का आधार है—
(अ) प्रश्न पूछना (ब) व्याख्यान
(स) रटंत (द) दण्ड। ❑ **उत्तर**—(अ)

12. समस्या-समाधान में पहला चरण है—
(अ) समस्या की पहचान (ब) उत्तर याद करना
(स) परीक्षा (द) दण्ड। ❑ **उत्तर**—(अ)

13. शिक्षार्थी केन्द्रित शिक्षण में मुख्य होता है—
(अ) शिक्षक (ब) पाठ्यपुस्तक
(स) शिक्षार्थी (द) परीक्षा। ❑ **उत्तर**—(स)

14. शिक्षक-शिक्षार्थी सम्बन्ध का आधुनिक स्वरूप है—
(अ) अधिनायकवादी (ब) सहयोगात्मक
(स) कठोर (द) औपचारिक।
❑ **उत्तर**—(ब)

इकाई-चार

समावेशी कक्षाएँ
[Inclusive Classrooms]

8

विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की शिक्षा
[CHILDREN WITH SPECIAL NEEDS]

अधिगम सम्बन्धी विकलांगताएँ
(Learning Disabilities)

अधिगम सम्बन्धी विकलांगताएँ वे न्यूरोलॉजिकल स्थितियाँ हैं, जिनके कारण किसी बच्चे की सीखने की क्षमता सामान्य बच्चों की तुलना में प्रभावित होती है। ये बच्चे सामान्य या उच्च बुद्धिमत्ता वाले हो सकते हैं, लेकिन विशेष शैक्षणिक क्षेत्र में कठिनाइयाँ अनुभव करते हैं।

प्रकार (Types of Learning Disabilities) :

(1) डिस्लेक्सिया (Dyslexia)—पढ़ने और शब्द पहचानने में कठिनाई।

(2) डिस्ग्राफिया (Dysgraphia)—लिखने में समस्या, अक्षरों और शब्दों का सही रूप न बन पाना।

(3) डिसकैलकुलिया (Dyscalculia)—गणित और अंकगणित समझने में कठिनाई।

(4) श्रवण प्रक्रिया विकार (Auditory Processing Disorder)—देखने और समझने में समस्या।

लक्षण (Signs and Symptoms) :

(1) पढ़ाई में धीमापन या लगातार गलतियाँ।

(2) लिखते समय अक्षरों का उल्टा या गलत होना।

(3) गणित के सवाल समझने या हल करने में कठिनाई।

(4) ध्यान केन्द्रित करने में समस्या।

(5) सामाजिक या भावनात्मक तनाव।

लक्षण (Types of Learning Disabilities)

(1) मस्तिष्क की संरचना और कार्य में अंतर।

(2) जन्म से पहले या जन्म के समय कुछ न्यूरोलॉजिकल प्रभाव।

(3) आनुवंशिक कारक।

उपचार और सहायता (Remedial Measures) :

(1) बच्चे के अनुसार विशेष शिक्षण योजना (Individualized Education Program (IEP)।

(2) सुनने, देखने और छूने के माध्यम से सीखना (Multisensory Teaching)।

(3) जैसे स्पीच-टू-टेक्स्ट, ऑडियोबुक (Assistive Technology)।

(4) नियमित प्रेरणा और सकारात्मक सिखाने का वातावरण।

अधिगम सम्बन्धी विकलांग बच्चे सामान्य रूप से समझदार होते हैं, लेकिन उनके सीखने के कुछ क्षेत्र कमजोर हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, एक बच्चा बहुत अच्छा सोच सकता है, लेकिन पढ़ाई में अक्षरों या शब्दों को पहचानने में कठिनाई हो सकती है। ऐसे बच्चों को अक्सर स्कूल में समस्यायें आती हैं क्योंकि उनकी समस्या केवल सीखने की प्रक्रिया से जुड़ी होती है, न कि उनकी बुद्धिमत्ता से। शिक्षक और अभिभावकों को चाहिए कि वे धैर्य और समझदारी के साथ बच्चों की मदद करें, उनकी ताकत को पहचानें और उनकी कमजोरी को सुधारने के लिए विशेष शिक्षण तकनीक अपनाएँ। सही मार्गदर्शन और सहायक साधनों के उपयोग से अधिगम सम्बन्धी विकलांग वाले बच्चे भी सामान्य शिक्षा स्तर तक पहुँच सकते हैं और अपने जीवन में सफल हो सकते हैं।

अधिगम सम्बन्धी विकलांगता को समझना चाहिए इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे शिक्षक, अभिभावक और समाज बच्चे की विशिष्ट आवश्यकताओं को पहचानकर सही मदद प्रदान कर सकते हैं। यह बच्चे के शैक्षणिक, सामाजिक और भावनात्मक विकास के लिए आवश्यक है।

1. समझ और पहचान (Awareness and Identification) :

(i) सही समय पर पहचानने से बच्चे को अपनी कठिनाइयों से निपटने में मदद मिलती है।

(ii) बच्चे की शिक्षा में सुधार लाती है।

2. विशेष शिक्षण योजना (Specialized Teaching) :

(i) शिक्षक Individualized Education Program (IEP) बना सकते हैं।

(ii) बच्चे को उसकी क्षमताओं के अनुसार सीखने का अवसर मिलता है।

3. भावात्मक और सामाजिक विकास (Emotional and Social Development) :

(i) बच्चे में आत्मविश्वास बढ़ता है।

(ii) नकारात्मक अनुभवों और हतोत्साह से बनाया जा सकता है।

4. समान अवसर (Equal Opportunities) :

(i) समावेशी शिक्षा में बच्चे को समान शिक्षा का अवसर मिलता है।

(ii) भविष्य में रोजगार और सामाजिक जीवन में सफलता की संभावना बढ़ती है।

5. समाज में जागरूकता (Awareness of Society) :

(i) लोगों में समझ बढ़ती है कि ये बच्चे कमजोर नहीं, बल्कि अलग तरह से सीखते हैं।

(ii) Stigma और भेदभाव कम होता है

विशेष आवश्यकता वाले बच्चे
(Children with Special Needs (Divyang)

विशेष आवश्यकता वाले बच्चे (Children with Special Needs या Divyang वे बच्चे होते हैं जिनके शारीरिक, मानसिक, संवेदी या भावनात्मक विकास में कुछ विशेष चुनौतियाँ होती हैं। ये चुनौतियाँ बच्चे की सामान्य शिक्षा, दैनिक जीवन क्रियाओं और सामाजिक सहभागिता को प्रभावित कर सकती हैं।

प्रकार (Types of Special Needs) :

(1) शारीरिक विकलांगता (Physical Disability)—चलने, हाथ-पाँव या शारीरिक गतिविधियों में कठिनाई।

(2) मानसिक विकलांगता (Intellectual Disability)—सामान्य समझ और सीखनें की क्षमता में अंतर।

(3) दृश्य विकलांगता (Visual Impairment)—अंधापन या कम दृष्टि।

(4) श्रवण विकलांगता (Hearing Impairment)—सुनने या बोलने में कठिनाई।

(5) मिश्रित या बहुविकलांगता (Multiple Disability)—एक से अधिक क्षेत्र में चुनौतियाँ।

विशेष आवश्यकताएँ (Special Requirement) :

(1) सहायक तकनीक (Assive Technology) जैसे व्हीलचेयर, श्रवण यंत्र, ब्रेल।

(2) बच्चे के अनुसार विशेष शिक्षण योजना पर (Individualized Education Plan (IEP) आधारित शिक्षण।

(3) शिक्षक और सहपाठी का सहायक और समावेशी व्यवहार।

सुझाव और रणनीतियाँ (Stretegies) :

(1) सहानुभूतिपूर्ण और समझदारी शिक्षण।

(2) पाठ्यक्रम में अनुकूलन (Curriculum Adaptation)।

(3) सामाजिक समावेशन और सहभागिता बढ़ाना।

महत्ता (Importance) :

1. समान अवसर (Equal Opportunities) :

(i) विशेष आवश्यकता वाले बच्चे भी सामान्य बच्चों की तरह शिक्षा और सामाजिक गतिविधियों में भाग ले सकें।

2. भावनात्मक और मानसिक विकास (Emotional and Mental Development) :

(i) समावेशी और सहयोगी माहौल उन्हें आत्म-विश्वास और स्वावलम्बन देता है।

3. समाज में जागरूकता (Social Awareness) :

(i) बच्चों और शिक्षकों में विविधता और सहानुभूति की समझ बढ़ती है।

4. भविष्य की सफलता (Future Success) :

(i) उचित शिक्षा और सहायता से दिव्यांग बच्चे अपने जीवन में सक्षम और सक्रिय नागरिक बन सकते हैं।

विशेष आवश्यकता वाले बच्चे (Divyang) सामान्य बच्चों की तरह ही सीखने और विकसित होने की इच्छा रखतें हैं लेकिन उनकी कुछ शारीरिक, मानसिक या संवेदी सीमाओं के कारण उन्हें अतिरिक्त सहायता की आवश्यकता होती है। स्कूल और घर में उन्हीं सही मार्गदर्शन, सहायक साधन और समावेशी वातावरण मिलना चाहिए। बच्चे के अनुसार विशेष शिक्षण योजना पर और सहायक तकनीक के उपयोग से ये बच्चे अपनी पूरी क्षमता तक पहुँच सकते हैं। इनके लिए सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार और सामाजिक समावेशन महत्वपूर्ण है, जिससे न केवल उनका शैक्षणिक विकास होता है, बल्कि आत्मविश्वास, सामाजिक कौशल और भावनात्मक मजबूती भी बढ़ती है। समाज में जागरूकता और समान अवसर प्रदान करना उन्हें स्वतंत्र और सक्षम नागरिक बनाने में सहायक होता है।

प्रारम्भिक हस्तक्षेप का महत्व
(Importance of Early Intervention)

प्रारम्भिक हस्तक्षेप (Early Intervention) का मतलब होता है कि विशेष आवश्यकता वाले बच्चों (Children with Special Needs/Divyang) की शैक्षणिक, सामाजिक और भावनात्मक कठिनाइयों को जितना जल्दी संभव हो, पहचान कर उन्हें उचित सहायता और उपचार देना।

1. समस्याओं की जल्दी पहचान (Early Identification of Challenges) :

(i) बच्चे में सीखने या विकास सम्बन्धी कठिनाइयों को समय रहते पहचाना जा सकता है।

(ii) इससे समस्या बढ़ने से पहले समाधान किया जा सकता है।

2. विशेष शिक्षण और उपचार (Specialized Teaching and Therapy) :

(i) Occupational therapy, speech therapy, physiotherapy जैसी सेवाएँ उपलब्ध करायी जा सकती हैं।

(ii) Individualized Education Program (IEP) जल्दी शुरू किया जा सकता है।

3. शैक्षणिक प्रगति (Academic Progress) :

(i) Early intervention से बच्चे की सीखने की क्षमता में सुधार आता है।

(iik) सामान्य बच्चों के साथ शिक्षा में भागीदारी बढ़ती है।

4. भावनात्मक और सामाजिक विकास (Emotional and Social Development) :

(i) आत्मविश्वास बढ़ता है और बच्चे सकारात्मक दृष्टिकोण रखते हैं।

(ii) सामाजिक कौशल विकसित होते हैं और साथी बच्चे के साथ बेहतर सम्बन्ध बनते हैं।

5. भविष्य की स्वतंत्रता और सफलता (Future Independence and Success) :

(i) समय पर हस्तक्षेप से बच्चे जीवन में आत्मनिर्भर बन सकते हैं।

(ii) उनके जीवन में रोजगार और सामाजिक सहभागिता के अवसर बढ़ते हैं।

प्रारम्भिक हस्तक्षेप (Early Intervention) का महत्व इस बात में है कि विशेष आवश्यकता वाले बच्चे अपनी चुनौतियों का सामना शुरूआती अवस्था में ही कर सकते हैं। जितनी जल्दी बच्चे की कठिनाइयों की पहचान होती है और उचित सहायता मिलती है, उतनी ही उनकी शिक्षा, सामाजिक और भावनात्मक क्षमता में सुधार होता है। उदाहरण के लिए, यदि किसी बच्चे को भाषण या सुनने में समस्या है तो प्रारम्भिक स्तर पर speech therapy शरू करने से बच्चा समय रहते सामान्य भाषा कौशल विकसित कर सकता है। इसी तरह, moral skill या पढ़ाई में समस्या वाले बच्चों को जल्दी intervention मिलने से उनके आत्मविश्वास और सीखने की क्षमता में बढ़ोत्तरी होती है। Early intervention न केवल बच्चे की वर्तमान शिक्षा को बेहतर बनाता है, बल्कि भविष्य में उसे स्वतंत्र, सक्षम और सामाजिक रूप से सक्रिय नागरिक बनाने में भी मदद करता है।

व्यक्तिगत शिक्षा योजना (IEP)
(Individualized Education Program)

IEP एक विशेष योजना है जो विशेष आवश्यकता वाले बच्चों (Children with Special Needs/Divyang) की **शैक्षणिक, सामाजिक और भावनात्मक आवश्यकताओं** को ध्यान में रखते हुए बनाई जाती है। इसका उद्देश्य बच्चे की क्षमता के अनुसार सीखने और विकास का मार्गदर्शन करना है।

1. उद्देश्य (Purpose) :

(i) बच्चे की विशेष आवश्यकताओं के अनुसार शिक्षा का लक्ष्य निर्धारित करना।

(ii) शिक्षकों, माता-पिता और विशेषज्ञों को साझा योजना के माध्यम से मार्गदर्शन देना।

2. घटक (Components of IEP) :

(i) Current Performance : बच्चे की वर्तमान शैक्षणिक स्थिति और कौशल

(ii) Annual Goals : वर्ष भर में प्राप्त करने योग्य लक्ष्य।

(iii) Special Services : आवश्यक सहायक सेवाएँ जैसे speech therapy, physiotherpy.

(iv) Assessment Methods : प्रगति की निगरानी और मूलयांकन के तरीके।

3. लाभ (Benefits) :

(i) बच्चा अपनी क्षमता के अनुसार सीख सकता है।

(ii) शिक्षकों और माता-पिता को स्पष्ट दिशा मिलती है।

(iii) शिक्षा में समावेशन और सफलता मिलती है।

4. साझेदारी (Collaboration) :

(i) IEP टीम में शिक्षक, विशेष शिक्षा विशेषज्ञ, माता-पिता और कभी-कभी बच्चा भी शामिल होता है।

(ii) भी मिलकर बच्चे के लिए सर्वोत्तम योजना बनाते हैं।

IEP यानी Individualized Education Program एक **व्यक्तिगत शिक्षा योजना** है जो विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की **शैक्षणिक और विकासात्मक जरूरतों** को पूरा करने के लिए बनाई जाती है। प्रत्येक बच्चे की क्षमता और कमजोरी अलग होती है, इसलिए IEP में उनकी वर्तमान स्थिति का मूल्यांकन किया जाता है और उसके आधार पर वर्ष के लिए लक्ष्य तय किए जाते हैं। इसमें आवश्यक सहायक सेवाएँ और शिक्षण विधियाँ भी शामिल होती हैं। IEP का मुख्य लाभ यह है कि इससे बच्चे को उसके अनुसार सीखने का अवसर मिलता है और शिक्षक तथा माता-पिता को एक स्पष्ट मार्गदर्शन मिलता है। यह समावेशी शिक्षा (Inclusive Education) में विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि यह सुनिश्चित करता है कि विशेष आवश्यकता वाले बच्चे भी सामान्य प्रणाली में भाग ले सकें और अपनी पूरी क्षमता तक पहुँच सकें।

भिन्नीकृत शिक्षण
(Differentiated Learning)

Differentiated Learning का अर्थ है शिक्षण की वह प्रक्रिया जिसमें शिक्षक प्रत्येक बच्चे की **शैक्षणिक क्षमता, सीखने की शैली, गति और रुचि** के अनुसार पाठ्यक्रम, गतिविधियाँ और शिक्षण सामग्री को अनुकूलित करता है। इसका मुख्य उद्देश्य यह है कि सभी बच्चे अपनी क्षमता के अनुसार सीख सकें और शैक्षणिक सफलता प्राप्त कर सकें।

1. उद्देश्य (Purpose)

(i) प्रत्येक बच्चे की व्यक्तिगत जरूरतों को पूरा करना।

(ii) सीखने में समान अवसर प्रदान करना।

(iii) बच्चे की सीखने की क्षमता और आत्मविश्वास बढ़ाना।

2. शिक्षण की रणनीतियाँ (Strategies for Differential Learning)

सामग्री (Content) : विषय और पाठ को बच्चों की क्षमता के अनुसार सरल या जटिल बनाना।

प्रक्रिया (Process) : बच्चों को अलग-अलग तरीकों से सीखने का अवसर देना जैसे समूह कार्य, प्रोजेक्ट या व्यक्तिगत अभ्यास।

उत्पाद/प्रदर्शन (Product) : बच्चों को अपने ज्ञान को प्रस्तुत करने के अलग-अलग विकल्प देना जैसे मौखिक प्रस्तुति, पोस्टर, मॉडल और रिपोर्ट।

शिक्षण वातावरण (Learning Environment) : शांत और सहयोगी माहौल बनाना जिसमें बच्चे आराम से सीख सकें।

3. लाभ (Benefit) :

(i) बच्चे अपनी गति और क्षमता के अनुसार सीखते हैं।

(ii) सीखने में रुचि और सक्रियता बढ़ती है।

(iii) कमजोर और सक्षम दोनों प्रकार के बच्चों के लिए शिक्षा समावेशी बनती है।

Differentiated Learning एक ऐसी शिक्षा पद्धति है जिसमें शिक्षक यह मानता है कि प्रत्येक बच्चा अलग तरह से सीखता है। किसी बच्चे को पढ़ाई में कठिनाई हो सकती है, तो किसी भी समूह कार्य में आसानी हो सकती है। शिक्षक बच्चों की व्यक्तिगत जरूरतों को समझकर पाठ्यक्रम, गतिविधियाँ और मूल्यांकन विधियाँ अनुकूलित

करता है। उदाहरण के लिए, गणित के सवाल को कुछ बच्चों के लिए आसान उदाहरण के साथ प्रस्तुत किया जा सकता है जबकि दूसरों को चुनौतीपूर्ण समस्याएँ दी जा सकती हैं। इसी तरह, कुछ बच्चे ग्रुप वर्क में बेहतर प्रदर्शन करते हैं, तो कुछ को व्यक्तिगत अभ्यास की आवश्यकता होती है। भिन्नीकृत शिक्षण से बच्चे न केवल अपनी क्षमता के अनुसार सीखते हैं बल्कि उनका आत्मविश्वास, सीखने में रुचि और सामाजिक कौशल भी बढ़ता है। यह समावेशी शिक्षा का एक महत्वपूर्ण अंग है क्योंकि यह सुनिश्चित करता है कि सभी बच्चे, चाहे उनकी सीखने की क्षमता कैसी भी हो, शिक्षा प्रणाली में समान अवसर पा सकें और अपने सर्वश्रेष्ठ परिणाम प्राप्त कर सकें।

यह शिक्षण की वह पद्धति है जिसमें शिक्षक प्रत्येक बच्चे की क्षमता, सीखने की शैली, रुचि और गति के अनुसार शिक्षा प्रदान करता है।

उद्देश्य (Purpose)

(i) प्रत्येक बच्चे को उसकी व्यक्तिगत ज़रूरत के अनुसार सीखने का अवसर देना।

(ii) कमजोर और सक्षम दोनों प्रकार के बच्चों के लिए समान अवसर सुनिश्चित करना।

(iii) बच्चों में आत्मविश्वास और सीखने में रुचि बढ़ाना।

शिक्षण का क्षेत्र (Areas of Differentiation) :

सामग्री (Content) : सीखने की सामग्री को बच्चों की समझ के अनुसार सरल या चुनौतीपूर्ण बनानारू।

प्रक्रिया (Process) : सीखने की गतिविधियों को बच्चों को शैली के अनुसार अलग-अलग रूप देना।

उत्पाद/प्रदर्शन (Product) : सीखने के परिणाम प्रस्तुत करने के विकल्प देना। जैसे–प्रोजेक्ट, मॉडल, मौखिक प्रस्तुति।

शिक्षण वातावरण (Learning Environment) : शांत, सहयोगी और सुरक्षित वातावरण तैयार करना।

शिक्षक की भूमिका (Teacher's Role) :

(i) बच्चों की व्यक्तिगत क्षमता और रुचियों का मूल्यांकन करना।

(ii) विभिन्न शिक्षण तकनीकों का चयन और अनुकूलन करना।

(iii) प्रेरक और सहयोगी माहौल प्रदान करना।

बच्चों की भूमिका (Students's Role) :

(i) अपने सीखने में सक्रिय भागीदारी लेना।

(ii) स्वयं की गति और शैली के अनुसार सीखना।

(iii) रचनात्मक और स्वतंत्र सोच को बढ़ावा देना।

लाभ (Benefits) :

(i) सीखने की क्षमता में वृद्धि।

(ii) बच्चों में आत्मविश्वास और रुचि बढ़ना।

(iii) समावेशी शिक्षा को बढ़ावा।

(iv) कमजोर और सक्षम दोनों बच्चों के लिए शिक्षा समान रूप से प्रभावी।

सुझाव और रणनीतियाँ (Tips and Strategies) :

(i) समूह और व्यक्तिगत गतिविधियों का मिश्रण।

(ii) बच्चों के लिए वैकल्पिक मूल्यांकन विधियों का प्रयोग।

(iii) टेक्नोलॉजी और सहायक साधनों का उपयोग।

(iv) नियमित फीडबैक और प्रगति की निगरानी।

दीर्घ एवं लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1. अधिगम अक्षमताओं से आप क्या समझते हैं? इसके प्रमुख प्रकारों एवं विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

उत्तर—अधिगम अक्षमता ऐसी स्थिति है जिसमें बच्चे की बुद्धि सामान्य होने के बावजूद पढ़ने, लिखने, गणना करने या समझने में कठिनाई होती है। इसके प्रकार प्रकार हैं—डिस्लेक्सिया (पढ़ने में कठिनाई), डिस्ग्राफिया (लिखने में कठिनाई) और डिस्कैल्कुलिया (गणितीय गणनाओं में कठिनाई)। ऐसे बच्चों को उपयुक्त शिक्षण रणनीतियों एवं सहयोग की आवश्यकता होती है ताकि वे अपनी क्षमताओं का पूर्ण विकास कर सकें।

प्रश्न 2. विशेष आवश्यकता वाले बच्चों (दिव्यांग) के लिए प्रारम्भिक हस्तक्षेप के महत्व को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—प्रारम्भिक हस्तक्षेप का अर्थ है समस्या की पहचान होते ही समस्या एवं उपचार प्रदान करना। इससे बच्चों की सीखने की क्षमता में सुधार होता है, आत्मविश्वास बढ़ता है तथा भविष्य की कठिनाइयों को कम किया जा सकता है। प्रारम्भिक अवस्था में दी गई सहायता भाषा, सामाजिक एवं संज्ञानात्मक विकास को सशक्त बनाती है और समावेशी शिक्षा को सफल बनाती है।

प्रश्न 3. IEP एवं विभेदित अधिगम की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए समावेशी कक्षा में इनके महत्व की विवेचना कीजिए।

उत्तर—IEP (Individualized Education Program) प्रत्येक विशेष आवश्यकता वाले बच्चे के लिए बनाई गयी व्यक्तिगत शैक्षिक योजना है, जो उसकी क्षमताओं, आवश्यकताओं एवं लक्ष्यों पर आधारित होती है। विभेदित अधिगम में शिक्षण विधियाँ, सामग्री एवं मूल्यांकन बच्चों की भिन्न आवश्यकताओं के अनुसासर बदल जाते हैं। ये दोनों उपाय समावेशी कक्षा में समान अवसर एवं प्रभावी अधिगम सुनिश्चित करते हैं।

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1. विशेषता आवश्यकता वाले बच्चे कहलाते हैं?

उत्तर—बच्चे दिव्यांग।

प्रश्न 2. पढ़ने में कठिनाई क्या है?

उत्तर—पढ़ने में कठिनाई—डिस्लेक्सिया।

प्रश्न 3. लिखने में कठिनाई क्या है?

उत्तर—लिखने में कठिनाई—डिस्ग्राफिया।

प्रश्न 4. गणना में कठिनाई क्या है?

उत्तर—गणना में कठिनाई—डिस्कैल्कुलिया।

प्रश्न 5. प्रारम्भिक सहायता को क्या कहते हैं?
उत्तर—प्रारम्भिक हस्तक्षेप।

प्रश्न 6. IEP का पूर्ण रूप लिखिए।
उत्तर—Individualized Education Program.

प्रश्न 7. IEP किसके लिए बनायी जाती है?
उत्तर—व्यक्तिगत बच्चे के लिए।

प्रश्न 8. विभेदित अधिगम का आधार क्या है?
उत्तर—व्यक्तिगत भिन्नताएँ।

प्रश्न 9. समावेशी शिक्षा का उद्देश्य बताइए।
उत्तर—समान अवसर।

प्रश्न 10. विशेष बच्चों के लिए आवश्यक वातावरण है?
उत्तर—सहायक।

प्रश्न 11. अधिगम अक्षमता का सम्बन्ध किससे है?
उत्तर—अधिगम अक्षमता का सम्बन्ध सीखने से है।

प्रश्न 12. आत्मविश्वास बढ़ाने में सहायक है?
उत्तर—सहायक।

प्रश्न 13. विशेष बच्चों के लिए शिक्षक की भूमिका क्या है?
उत्तर—सुविधा प्रदाता।

प्रश्न 14. प्रारम्भिक पहचान का लाभ क्या है?
उत्तर—बेहतर विकास।

प्रश्न 15. समावेशी शिक्षा की विशेषता क्या है?
उत्तर—स्वीकार्यता।

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. अधिगम अक्षमता का अर्थ है—
(अ) कम बुद्धि (ब) सीखने में कठिनाई
(स) शारीरिक अक्षमता (द) मानसिक बीमारी।
❑ **उत्तर**—(ब)

2. डिस्लेक्सिया किससे सम्बन्धित है?
(अ) लेखन (ब) गणना
(स) पठन (द) सुनना। ❑ **उत्तर**—(स)

3. डिस्ग्राफिया का सम्बन्ध है—
(अ) पढ़ने से (ब) लिखने से
(स) बोलने से (द) सुनने से। ❑ **उत्तर**—(ब)

4. डिस्कैल्कुलिया किसमें कठिनाई दर्शाता है?
(अ) भाषा (ब) स्मृति
(स) गणित (द) लेखन। ❑ **उत्तर**—(स)

5. दिव्यांग शब्द का अर्थ है—
(अ) अक्षम (ब) विशेष क्षमता वाला
(स) कमजोर (द) असमर्थ। ❑ **उत्तर**—(ब)

6. प्रारम्भिक हस्तक्षेप का मुख्य उद्देश्य है—
(अ) दण्ड (ब) शीघ्र सहायता
(स) परीक्षा (द) वर्गीकरण।
❑ **उत्तर**—(ब)

7. प्रारम्भिक हस्तक्षेप से क्या लाभ होता है?
(अ) समस्या बढ़ती है? (ब) विकास में सुधार
(स) भय उत्पन्न होता है (द) अलगाव बढ़ता है।
❑ **उत्तर**—(ब)

8. IEP किसके लिए बनाई जाती है?
(अ) पूरी कक्षा (ब) विद्यालय
(स) विशेष बच्चा (द) शिक्षक। ❑ **उत्तर**—(स)

9. IEP का आधार होता है—
(अ) पाठ्यपुस्तक (ब) बच्चे की आवश्यकता
(स) परीक्षा (द) समय-सारणी।
❑ **उत्तर**—(ब)

10. विभेदित अधिगम का अर्थ है—
(अ) समान शिक्षण (ब) बच्चों के अनुसार शिक्षण
(स) कठोर शिक्षण (द) परीक्षा आधारित शिक्षण।
❑ **उत्तर**—(ब)

11. समावेशी कक्षा में शिक्षक की भूमिका होती है—
(अ) नियंत्रक (ब) सुविधा प्रदाता
(स) दण्डकर्ता (द) निरीक्षक। ❑ **उत्तर**—(ब)

12. विशेष आवश्यकता वाले बच्चे चाहिए—
(अ) उपेक्षा (ब) सहयोग
(स) दण्ड (द) अलगाव। ❑ **उत्तर**—(ब)

13. समावेशी शिक्षा का सिद्धान्त है—
(अ) भेदभाव (ब) समानता
(स) प्रतिस्पर्धा (द) वर्गीकरण।
❑ **उत्तर**—(ब)

14. विशेष बच्चों के लिए उपयुक्त वातावरण होता है—
(अ) कठोर (ब) सहायक
(स) भयपूर्ण (द) उपेक्षात्मक।
❑ **उत्तर**—(ब)

9

शिक्षार्थी के अनुकूल वातावरण

[LEARNER FRIENDLY ENVIRONMENT]

समावेशी और सीखने के अनुकूल वातावरण बनाना
(Creating Inclusive Learner Friendly Environment)

Inclusive learner friendly environment का मतलब है ऐसा शिक्षण और विद्यालयी वातावरण तैयार करना जो **सभी बच्चों की शैक्षणिक, सामाजिक और भावनात्मक जरूरतों** को पूरा करे, चाहे वे सामान्य हों या विशेष आवश्यकता वाले (Children with Special Needs/Divyang)। इसका उद्देश्य यह है कि सभी बच्चे सुरक्षित, सहयोगी और प्रेरक माहौल में सीख सकें।

महत्ता :

1. समान अवसर (Equal Opportunities) :

(i) सभी बच्चों को शिक्षा में समान अवसर मिलता है।

(ii) विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को भी सामान्य बच्चों के साथ सीखने और भाग लेने का मौका मिलता है।

2. सकारात्मक सीखने का माहौल (Positive Learning Environment) :

(i) बच्चे स्वतंत्र और आत्मविश्वासी होकर सीख सकते हैं।

(ii) डर और तनाव का माहौल कम होता है।

3. सामाजिक समावेशन (Social Inclusion) :

(i) बच्चे साथी छात्रों के साथ मिलकर काम करना और संवाद करना सीखते हैं।

(ii) सामाजिक कौशल और सहयोग की भावना विकसित होती है।

4. भावनात्मक विकास (Emotional Development) :

(i) समावेशी वातावरण बच्चों में आत्म-सम्मान और आत्मविश्वास बढ़ाता है।

(ii) बच्चों में सकारात्मक दृष्टिकोण और सहानुभूति विकसित होती है।

5. सफलता और प्रगति (Academic and Overall Progress) :

(i) बच्चे अपनी क्षमता और रुचि के अनुसार सीख सकते हैं।

(ii) सीखने में रुचि और उपलब्धि बढ़ती है।

6. सामाजिक जागरूकता (Social Awareness) :

(i) बच्चे विविधता को समझते हैं और भेदभाव कम होता है।

(ii) सहिष्णुता और सहयोग की भावना बढ़ती है।

शिक्षार्थी के अनुकूल वातावरण का महत्व इसलिए है क्योंकि यह सुनिश्चित करता है कि सभी बच्चे, चाहे उनकी शारीरिक, मानसिक या संवेदी क्षमता जैसी भी हो, शिक्षा और सामाजिक गतिविधियों में पूरी तरह भाग ले सकें। ऐसा वातावरण बच्चों को **सुरक्षित, सहयोगी और प्रेरक** अनुभव प्रदान करता है। इसमें बच्चे न केवल अपनी शिक्षा में आगे बढ़ते हैं, बल्कि उनके सामाजिक और भावनात्मक कौशल भी विकसित होते हैं। उदाहरण के लिए, यदि किसी बच्चे को चलने या सुनने में कठिनाई है, तो शिक्षक और स्कूल प्रशासन सहायक उपकरण और अनुकूलन (adaptation) का प्रयोग करके उसे अन्य बच्चों के साथ पूरी तरह शामिल कर सकते हैं। Inclusive environment बच्चों में समानता, सहिष्णुता और आत्मविश्वास को बढ़ावा देता है। इससे न केवल उनकी शिक्षा में सुधार होता है, बल्कि वे सामाजिक और भावनात्मक रूप से भी मजबूत और जिम्मेदार नागरिक बनते हैं।

अनुकूल वातावरण बनाने का मतलब केवल शारीरिक सुविधाएँ देना नहीं है, बल्कि **शिक्षण पद्धति, सहायक उपकरण, समावेशी गतिविधियाँ और सहयोगी मानसिकता** भी शामिल है। उदाहरण के लिए, यदि किसी बच्चे को सुनने में कठिनाई है, तो शिक्षक hearing aid या visual cues का उपयोग करके उसे सीखने में शामिल कर सकते हैं। इसी तरह, अलग-अलग सीखने की क्षमताओं वाले बच्चों के लिए group work, project और individualized learning का प्रयोग किया जाता है। इस तरह का वातावरण न केवल बच्चों की शैक्षणिक सफलता बढ़ाता है, बल्कि उनके सामाजिक और भावनात्मक विकास में भी मदद करता है और उन्हें जीवन में जिम्मेदार और सक्षम नागरिक बनने के लिए तैयार करता है।

अनूकूल वातावरण बनाने के लिए कई के संसाधनों (Multiple Resources) की आवश्यकता होती है। इसका उद्देश्य यह है कि सभी बच्चे, चाहे उनकी क्षमता, सीखने की शैली या विशेष आवश्यकता कैसी भी हो, **समान अवसर और सहयोगी माहौल** में सीख सकें।

1. विविध शिक्षण सामग्री (Equal Opportunities) :

(i) बच्चों की अलग-अलग क्षमताओं और रुचियों के अनुसार पाठ्य-सामग्री उपलब्ध होना चाहिए।

(ii) उदाहरण : चित्र, मॉडल, पोस्टर, ऑडियो-वीडियो सामग्री, इंटरेक्टिव टेक्नोलॉजी।

2. सहायक उपकरण (Assive Devices) :

(i) विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए उपकरण जरूरी हैं, जैसे– व्हीलचेयर, ब्रेल किताबें, श्रवण यंत्र।

(ii) इससे बच्चे सहायता से सीखने और भाग लेने में सक्षम होते हैं।

3. तकनीकी संसाधन (Technological Resources) :

(i) कम्पयूटर, टेबलेट, educational software और apps का उपयोग सीखने को रोचक और प्रभावी बनाता है।

(ii) Visual और auditory learners दोनों के लिए लाभकारी।

4. सहयोगी वातावरण (Supportive Environment) :

(i) शिक्षक, सहपाठी और अभिभावक का सहयोग बच्चों की सीखने की क्षमता को बढ़ाता है।

(ii) Guidance से बच्चे आत्मविश्वासी बनते हैं।

अनुकूल वातावरण बनाने में multiple resources की आवश्यकता इसलिए है क्योंकि हर बच्चे की सीखने की क्षमता और शैली अलग होती है। उदाहरण के लिए, कुछ बच्चे visual learning में तेज होते हैं, जबकि कुछ auditory learning के माध्यम से बेहतर समझते हैं। इसलिए चित्र, चार्ट, ऑडियो क्लिप और डिजिटल उपकरण का प्रयोग आवश्यक है। साथ ही, विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए assistive devices जैसे व्हीलचेयर, ब्रेल किताबें या hearing aid भी जरूरी हैं। ये संसाधन न केवल सीखने को आसान बनाते हैं, बल्कि बच्चों में आत्मविश्वास और सक्रिय भागीदारी को भी बढ़वा देते हैं। शिक्षक और सहपाठियों का सहयोग भी उतना ही महत्वपूर्ण है क्योंकि यह एक सुरक्षित और सकारात्मक माहौल तैयार करता है। अंततः, विभिन्न संसाधनों का संयोजन बच्चों की **शैक्षणिक, सामाजिक और भावनात्मक विकास में** मदद करता है और यह सुनिश्चित करता है कि सभी बच्चे समावेशी और learner friendly environment का हिस्सा बन सकें।

1. सामग्री का अनुकूलन (Adapting Content) :

(i) पाठ्यक्रम को बच्चों की क्षमताओं के अनुसार सरल या चुनौतीपूर्ण बनाना।

(ii) उदाहरण : कुछ बच्चों को visual aids जैसे चित्र, चार्ट और diagrams का प्रयोग।

2. शिक्षण पद्धति का अनुकूलन (Adapting Teaching Methods)

(i) विभिन्न सीखने की शैलियों के अनुसार teaching strategies अपनाना।

(ii) Group activities, peer learning, hands-on project और individualized instruction का उपयोग।

3. मूल्यांकन और प्रदर्शन का अनुकूलन (Adapting Assessment and Output) :

(i) बच्चों की ज्ञान दिखाने के अलग-अलग विकल्प देना।

(ii) उदाहरण : मौखिक प्रस्तुति, प्रोजेक्ट, पोस्टर या डिजिटल प्रस्तुति।

4. सहायक उपकरण और तकनीकी साधनों का उपयोग (Use of Assistive and Technological Tools) :

(i) व्हीलचेयर, ब्रेल किताबें, hearing aid, educational apps और software का प्रयोग।

5. सहयोगी और समावेशी वातावरण (Supportive and Inclusive feedback) :

(i) शिक्षक और सहपाठियों का सहयोग, mentoring और positive feeback.

(ii) सुरक्षित और प्रेरक माहौल बनाना, जहाँ बच्चे बिना डरे और तनाव के सीख सकें।

Diverse needs वाले बच्चों के लिए inclusive learner friendly environment बनाने में ways and means of adapting अत्यंत महत्वपूर्ण है। हर बच्चे की सीखने की क्षमता और शैली अलग होती है। उदाहरण के लिए, कुछ बच्चे visual learning में तेज होते हैं, तो कुछ auditory या kinesthetic learning में बेहतर प्रदर्शन करते हैं। इसलिए पाठ्यक्रम, शिक्षण पद्धति और मूल्यांकन में अनुकूलन जरूरी है। सामग्री को चित्र, चार्ट और मॉडल के माध्यम से सरल बनाया जा सकता है। शिक्षक group activities, peer learning और hands-on projects का उपयोग करके बच्चों को सक्रिय रूप से सीखने में शामिल कर सकते हैं। साथ ही, assistive devices और तकनीकी साधन जैसे ब्रेल किताबें, hearing aid और educational software बच्चों की सीखने की क्षमता बढ़ाते हैं। एक सहयोगी और सकारात्मक वातावरण बच्चों में आत्मविश्वास, सामाजिक कौशल और सक्रिय भागीदारी को बढ़ावा देता है। इस तरह के अनुकूलन से सभी बच्चे, चाहे उनकी क्षमताएँ कैसी भी हों, समान रूप से सीख सकते हैं और समावेशी शिक्षा का लाभ उठा सकते हैं।

लचीली योजना
(Flexible Planning)

लचीली योजना का अर्थ है **शिक्षण और पाठ्यक्रम की योजना को लचीला बनाना,** ताकि यह सभी बच्चों की **शैक्षणिक, सामाजिक और भावनात्मक आवश्यकताओं** के अनुसार अनुकूलित हो सके। इसमें बच्चों की विभिन्न क्षमताओं, सीखने की शैली और गति का ध्यान में रखते हुए गतिविधियाँ और मूल्यांकन विधियाँ तैयार की जाती हैं।

व्यक्तिगत जरूरतों के अनुसार योजना (Planning for Individual Needs)

व्यक्तिगत जरूरतों के अनुसार योजना (Planning for Individual Needs) :

(i) प्रत्येक बच्चे की क्षमता और कमजोरी के अनुसार शिक्षण गतिविधियाँ तैयार करना।

(ii) उदाहरण : किसी बच्चे को कठिन गणित के सवाल आसान उदाहरण के साथ समझाना।

लचीलापन (Flexibility) :

(i) पाठ्यक्रम और गतिविधियों को समय, सामग्री और शिक्षण शैली के अनुसार बदलने की क्षमता।

(ii) आवश्यकता पड़ने पर teaching strategies या resources को संशोधित करना।

विविध शिक्षण पद्धतियाँ (Varied Teaching Methods) :

(i) Group work, peer learning, project-based learning और hands-on activities का प्रयोग।

(ii) विभिन्न सीखने की शैली वाले बच्चों को सीखने का अवसर देना।

मूल्यांकन का अनुकूलन (Flexible Assessment) :

(i) बच्चों को knowledge दिखाने के लिए विकल्प प्रदान करना जैसे oral presentation, poster, project या digital assignment.

सहयोगी वातावरण (Supportive Environment) :

(i) शिक्षक और सहपाठियों का सहयोग और mentoring.

(ii) सकारात्मक feeback और encouragement देना।

लचीली योजना का महत्व इसलिए है क्योंकि प्रत्येक बच्चे की सीखने की क्षमता और शैली अलग होती है। कुछ बच्चे तेजी से सीखते हैं, जबकि कुछ को अधिक समय और समर्थन की आवश्यकता होती है। लचीली योजना के माध्यम से शिक्षक पाठ्यक्रम, गतिविधियाँ और मूल्यांकन विधियाँ बच्चों की आवश्यकताओं के अनुसार अनुकूलित कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, यदि किसी बच्चे की पढ़ाई में कठिनाई है, तो शिक्षक उसे अतिरिक्त सहायता, visual aids या simplified worksheets प्रदान कर सकते हैं। इसी तरह बच्चों को project, group work या digital presentation के विकल्प देकर उनका learning experience बढ़ाया जा सकता है। Flexible planning से न केवल बच्चों की सीखने की क्षमता बढ़ती है, बल्कि उनका आत्मविश्वास और सक्रिय भागीदारी भी सुनिश्चित होती है। यह समावेशी और learner friendly environment का महत्वपूर्ण हिस्सा है, जो सभी बच्चों को समान अवसर और सहयोगी माहौल प्रदान करता है।

कक्षा प्रबन्धन
(Classroom Management)

कक्षा प्रबन्धन का अर्थ है **कक्षा में व्यवस्थित, सुरक्षित और सहयोगी वातावरण तैयार करना,** ताकि सभी बच्चे, चाहे उनकी क्षमता या विशेष आवश्यकता कैसी भी हो, सीखने में सक्रिय रूप से भाग ले सके। यह समावेशी और learner friendly environment बनाने का महत्वपूर्ण हिस्सा है।

1. सुसंगठित कक्षा वातावरण (Organized Classroom Environment)

(i) कक्षा में बैठने की व्यवस्था, सामग्री और शिक्षण उपकरण सुव्यवस्थित होना चाहिए।

(ii) बच्चों को आसानी से संसाधनों तक पहुँच मिलनी चाहिए।

2. नियम और अनुशासन (Rules and Discipline) :

* स्पष्ट और सरल नियम निर्धारित करें।
* सभी बच्चों के लिए समान रूप से लागू नियमों का पालन।

(ii) सकारात्मक reinforcement के माध्यम से अनुशासन बनाए रखना।

3. समावेशी गतिविधियाँ (Inclusive Activities)

(i) समूह कार्य (Group work), जोड़ी की गतिविधियाँ (Pair activities) और hands-on learning.

(ii) विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को मुख्यधारा में शामिल करना।

4. समय प्रबन्धन (Time Management)

(i) कक्षा की गतिविधियों के लिए समय का सही विभाजन।

(ii) बच्चों की सीखने की गति के अनुसार समय में लचीलापन।

5. सहायक और सहयोगी वातावरण (Supportive and Collaborative Environment) :

(i) शिक्षक, सहपाठी और अभिभावक का सहयोग।

(ii) बच्चे को प्रोत्साहित करना और उनकी भागीदारी सुनिश्चित करना।

कक्षा प्रबन्धन समावेशी और learner friendly environment बनाने का अधिकार है। अच्छी कक्षा प्रबन्धन से बच्चों को एक **सुरक्षित, व्यवस्थित और सहयोगी वातावरण** मिलता है। उदाहरण के लिए, यदि किसी बच्चे को चलने या सुनने में कठिनाई है तो कक्षा की बैठने की व्यवस्था और संसाधन उसकी सुविधा के अनुसार अनुकूलित किए जा सकते हैं। स्पष्ट नियम और अनुशासन बच्चों को सीखने में केन्द्रित रखते हैं, जबकि सकारात्मक reinforcement उन्हें प्रेरित करता है। समय का सही प्रबन्धन यह सुनिश्चित करता है कि हर बच्चा अपनी गति से सीख सके। Inclusive activities और सहयोगी माहौल बच्चों में आत्मविश्वास, सामाजिक, कौशल और सक्रिय भागीदारी को बढ़ाते हैं। कक्षा प्रबन्धन का सही उपयोग न केवल शैक्षणिक सफलता बढ़ाता है, बल्कि बच्चों में सामाजिक और भावनात्मक विकास भी सुनिश्चित करता है और सभी बच्चों को समान अवसर प्रदान करता है।

कक्षा प्रबन्धन का महत्व
(Importance of Classroom Management)

कक्षा प्रबन्धन का अर्थ है कक्षा में **व्यवस्था, अनुशासन और सहयोगी वातावरण** बनाए रखना, ताकि सभी बच्चे सीखने में सक्रिय रूप से भाग ले सकें। इसके बिना सीखने की प्रक्रिया प्रभावी नहीं हो पाती।

1. सुसंगठित और व्यवस्थित वातावरण (Safe and Organized Environment) :

(i) बच्चे बिना डर और तनाव के सीख सकते हैं।

(ii) संसाधनों और गतिविधियों तक आसानी से पहुँच सकते हैं।

2. समान अवसर और समावेशन (Equal Opportunities and Inclusion) :

(i) सभी बच्चों को, चाहे वे सामान्य हों या विशेष आवश्यकता वाले, शिक्षा में समान भागीदारी मिलती है।

3. सकारात्मक सीखने की प्रक्रिया (Positive Learning Process) :

(i) बच्चे अनुशासित और केन्द्रित रहते हैं।

(ii) सीखने में रुचि और सक्रियता बढ़ती है।

4. सामाजिक और भावनात्मक विकास (Social and Emotional Development) :

(i) बच्चों में आत्मविश्वास, सहयोग और सहिष्णुता बढ़ती है।

(ii) सामूहिक कार्य और सहभागिता के माध्यम से सामाजिक कौशल विकसित होते हैं।

5. शैक्षणिक सफलता (Academic Success) :

(i) कक्षा का सुव्यवस्थित प्रबन्धन बच्चों की सीखने की क्षमता को अधिकतम करता है।

(ii) समय प्रबन्धन और स्पष्ट नियम सीखने को प्रभावी बनाते हैं।

कक्षा प्रबन्धन का महत्व इसलिए है क्योंकि यह सीखने की प्रक्रिया को **सुरक्षित, व्यवस्थित और प्रभावी** बनाता है। यदि कक्षा में नियम, अनुशासन और सहयोगी वातावरण मौजूद हो, तो बच्चे बिना डर और तनाव के सीख सकते हैं। यह विशेष रूप से समावेशी कक्षाओं में आवश्यक है, जहाँ विभिन्न क्षमता वाले बच्चे एक साथ पढ़ते हैं। अच्छे कक्षा प्रबंधन से बच्चों में आत्मविश्वास और सामाजिक कौशल का विकास होता है। समय का सही प्रबंधन और स्पष्ट दिशा उन्हें सक्रिय रूप से सीखने में मदद करता है। परिणामस्वरूप, बच्चों की शैक्षणिक सफलता बढ़ती है और उन्हें जीवन में जिम्मेदार और सक्षम नागरिक बनने के लिए तैयार किया जा सकता है।

दीर्घ एवं लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1. शिक्षार्थी-अनुकूल एवं समावेशी वातावरण से आप क्या समझते हैं? इसके महत्व को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—शिक्षार्थी-अनुकूल एवं समावेशी वातावरण वह वातावरण है जिसमें सभी बच्चे—चाहे उनकी शारीरिक, बौद्धिक, सामाजिक या सांस्कृतिक भिन्नताएँ हों—सुरक्षित, सम्मानित एवं स्वीकार्य महसूस करते हैं। ऐसा वातावरण बच्चे के आत्मविश्वास को बढ़ाता है, सहभागिता को प्रोत्साहित करता है तथा सीखने को आनंददायक बनाता है। समावेशी वातावरण समान अवसर प्रदान करता है और सभी बच्चों के समग्र विकास में सहायक होता है।

प्रश्न 2. विविध आवश्यकताओं वाले बच्चों के लिए बहु-संसाधनों की आवश्यकता एवं उनके अनुकूलन के उपायों का वर्णन कीजिए।

उत्तर—समावेशी कक्षा में एक ही प्रकार का संसाधन सभी बच्चों के लिए पर्याप्त नहीं होता। दृश्य, श्रव्य, स्पर्शात्मक, डिजिटल एवं स्थानीय संसाधनों का प्रयोग बच्चों की विविध आवश्यकताओं को पूरा करता है। शिक्षण सामग्री में सरल भाषा, चित्र, गतिविधियाँ, तकनीकी उपकरण तथा सहायक साधनों का उपयोग कर अधिगम को प्रभावी बनाया जा सकता है।

प्रश्न 3. लचीली योजना एवं कक्षा प्रबंधन की भूमिका को स्पष्ट करते हुए समावेशी विद्यालय की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

उत्तर—लचीली योजना में पाठ्यवस्तु, समय, गतिविधियों एवं मूलयांकन में आवश्यकतानुसार परिवर्तन किया जाता है। प्रभावी कक्षा प्रबंधन सहयोगात्मक वातावरण, अनुशासन, सहभागिता एवं सकारात्मक सम्बन्धों को बढ़ावा देता है। समावेशी विद्यालय बच्चों की विविधता को स्वीकार करता है और सभी के लिए समान सीखने के अवसर सुनिश्चित करता है।

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1. शिक्षार्थी-अनुकूल वातावरण का आधार क्या है?

उत्तर—स्वीकार्यता है।

प्रश्न 2. समावेशी शिक्षा का मुख्य उद्देश्य क्या है?

उत्तर—समान अवसर।

प्रश्न 3. विविधता को स्वीकार करने वाला विद्यालय का नाम बताइए।

उत्तर—समावेशी विद्यालय।

प्रश्न 4. अनेक प्रकार के साधन क्या कहलाते हैं?

उत्तर—बहु-संसाधन।

प्रश्न 5. लचीली योजना का अर्थ क्या है?

उत्तर—अनुकूलन।

प्रश्न 6. कक्षा प्रबंधन का उद्देश्य बताइए।

उत्तर—सकारात्मक वातावरण।

प्रश्न 7. बच्चों की भिन्न आवश्यकताएँ बताइए।

उत्तर—विविध आवश्यकताएँ।

प्रश्न 8. सीखने में सहायक वातावरण।

उत्तर—समर्थक।

प्रश्न 9. शिक्षार्थी-अनुकूल कक्षा की विशेषता क्या है?

उत्तर—सुरक्षा।

प्रश्न 10. संसाधनों का सही उपयोग क्या कहलाता है?

उत्तर—प्रभावशीलता।

प्रश्न 11. सहभागिता बढ़ाने वाला तत्व बताइए।

उत्तर—प्रोत्साहन।

प्रश्न 12. शिक्षक की भूमिका क्या है?

उत्तर—सुविधा प्रदाता।

प्रश्न 13. समावेशी कक्षा में आवश्यक मूल्य बताइए।

उत्तर—सम्मान।

प्रश्न 14. लचीले पदार्थ का लाभ बताइए।

उत्तर—बेहतर अधिगम।

प्रश्न 15. सकारात्मक कक्षा का आधार क्या है?

उत्तर—सहयोग।

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. शिक्षार्थी-अनुकूल वातावरण का अर्थ है—
(अ) कठोर अनुशासन
(ब) बच्चों के अनुकूलन सीखने का वातावरण।
(स) केवल परीक्षा पर केन्द्रित
(द) शिक्षक-केन्द्रित। ❑ उत्तर—(ब)

2. समावेशी वातावरण में बच्चों की मिलता है—
(अ) भेदभाव (ब) भय
(स) स्वीकार्यता (द) उपेक्षा। ❑ उत्तर—(स)

3. समावेशी शिक्षा का मूल सिद्धान्त है—
(अ) प्रतिस्पर्धा (ब) समानता
(स) नियंत्रण (द) वर्गीकरण। ❑ उत्तर—(ब)

4. बहु-संसाधनों का प्रयोग क्यों आवश्यक है?
(अ) समय बचाने के लिए
(ब) विविध आवश्यकता को पूरा करने के लिए
(स) परीक्षा हेतु
(द) अनुशासन हेतु। ❑ उत्तर—(ब)

5. लचीली योजना का मुख्य लाभ है—
(अ) कठोरता (ब) अनुकूलन
(स) विलम्ब (द) सीमितता।
❑ उत्तर—(ब)

6. कक्षा प्रबन्धन का उद्देश्य है—
(अ) दण्ड देना (ब) नियंत्रण
(स) सकारात्मक सीखने का वातावरण
(द) परीक्षा लेना। ❑ उत्तर—(स)

7. समावेशी विद्यालय किसे महत्व देता है?
(अ) केवल प्रतिभाशाली बच्चों को
(ब) सभी बच्चों को
(स) केवल शिक्षक को
(द) केवल पाठ्य-पुस्तक को। ❑ उत्तर—(ब)

8. विविध आवश्यकताओं वाले बच्चों के लिए शिक्षण में आवश्यक है—
(अ) एकरूपता (ब) लचीलापन
(स) कठोरता (द) उपेक्षा। ❑ उत्तर—(ब)

9. सहयोगात्मक वातावरण से बढ़ता है—
(अ) भय (ब) आत्मविश्वास
(स) तनाव (द) अलगाव। ❑ उत्तर—(ब)

10. समावेशी कक्षा में शिक्षक की भूमिका होती है—
(अ) नियंत्रक (ब) सुविधा प्रदाता
(स) दण्डकर्ता (द) निरीक्षक। ❑ उत्तर—(ब)

11. शिक्षार्थी-अनुकूल कक्षा में शिक्षक की भूमिका होकती है—
(अ) सुरक्षा (ब) सम्मान
(स) भय (द) सहभागिता।
❑ उत्तर—(स)

12. संसाधनों का अनुकूलन किया जाता है—
(अ) शिक्षक के लिए
(ब) पाठ्य-पुस्तक के लिए
(स) बच्चों की आवश्यकता के अनुसार
(द) परीक्षा के लिए। ❑ उत्तर—(स)

13. सकारात्मक कक्षा वातावरण में होता है—
(अ) सहयोग (ब) दण्ड
(स) उपेक्षा (द) कठोरता। ❑ उत्तर—(अ)

14. समावेशी विद्यालय का उद्देश्य है—
(अ) भेदभाव (ब) चयन
(स) समग्र विकास
(द) केवल अकादमिक उपलब्धि। ❑ उत्तर—(स)

15. लचीली योजना में बदला जा सकता है—
(अ) बच्चे (ब) शिक्षण रणनीति
(स) विद्यालय (द) शिक्षक। ❑ उत्तर—(ब)

नोट—इस पुस्तक को यथासम्भव शुद्ध एवं त्रुटि रहित प्रस्तुत करने का भरसक प्रयास किया गया है, फिर भी इसमें कोई कमी अथवा त्रुटि अनिच्छाकृत ढंग से रह गयी हो तो उसके कारण क्षति एवं संताप के लिए प्रकाशक एवं मुद्रक की कोई जिम्मेदारी नहीं होगी। पाठकों से भूल-सुधार एवं सुझाव आमन्त्रित हैं। किसी भी परिवाद के लिए न्यायिक क्षेत्र आगरा ही मान्य होगा।